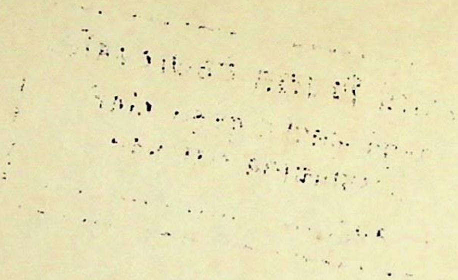
यज्ञ महिमा

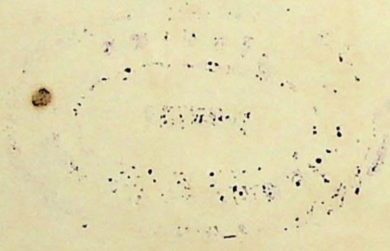


प्रकाशक :—
...जनाथ गुप्ता
प्रधान
...मठ (वेद मन्दिर)

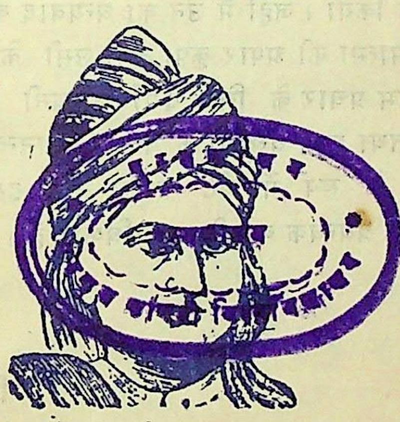
मुहल्ला ढन्न, रेलवे रोड,
जालन्धर शहर।

मूल्य : १ रु०





यज्ञ महिमा



प्रकाशक :—
श्री बैजनाथ गुप्ता
प्रधान

श्री दयानन्द मठ (वेद मन्दिर)

मुहल्ला ढन्न, रेलवे रोड,
जालन्धर शहर ।

मूल्य : १ रु०

प्रस्तावना

यह पुस्तक श्री दयानन्द मठ मुहल्ला ढन्न, रेलवे रोड, जालन्धर की प्रबन्धक कमेटी की ओर से पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी सरस्वती (आचार्य राम देव जी) द्वारा प्रकाशित की गई। यह पुस्तक जहाँ स्वामी जी के आशीर्वाद से तैयार की गई, वहाँ इस पुस्तक को लिखने के लिये वैदिक साधन आश्रम, यमुना नगर के ब्रह्मचारियों ने अति परिश्रम किया। जहाँ मैं उन का धन्यवाद करता हूँ. वहाँ परम पिता परमात्मा की अपार कृपा तथा उसी के आशीर्वाद से मैं यह पुस्तक धर्म प्रचार के लिये धर्मावलम्बिनी माताओं और बहनों के लिये तथा आर्य बन्धुओं के लिये दयानन्द मठ की ओर से प्रथम पुष्प के रूप में भेंट करता हूँ। इस पुस्तक पर श्री दयानन्द मठ प्रबन्धक कमेटी का अधिकार है।

निवेदक :—

श्री बैजनाथ गुप्ता।
कार्यकर्ता प्रधान
श्री दयानन्द मठ (देव मन्दिर)
रेलवे रोड, जालन्धर।

॥ ओ३म् ॥

(ब्रह्म यज्ञ) सन्ध्योपासना

स्नानादि से निवृत्त होकर पवित्र स्थान पर बैठ कर पहले तीन प्राणायाम करें फिर गायत्री मन्त्र (ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुः) इत्यादि से शिखा को बाँधें।

अथ आचमन मन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

[यजु० अ० ३६ मं० १२]

इस मन्त्र को पढ़कर तीन आचमन करें।

अर्थ :—(देवीः आपः) दिव्य गुणों और शक्तियों से युक्त सब को आनन्द प्रदान करने वाला—सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला, सर्वव्यापक परमेश्वर (अभिष्टये) मनोवांच्छित आनन्द के लिए (पीतये) पूर्ण आनन्द के लिए (नः शं भवन्तु) हमें शान्ति देने वाला हो। वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) शान्ति की (अभिस्रवन्तु) चारों ओर से वृष्टि करें।

अथ इन्द्रिय स्पर्श:

बायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से जल स्पर्श करके पहले दाहिनी ओर फिर बायीं ओर नीचे लिखे मंत्रों से अंग स्पर्श करें।

ओं वाक् वाक्। इससे मुख को स्पर्श करें।
ओं प्राण: प्राण:। इससे नाक के दोनों छिद्रों को स्पर्श करें।
ओं चक्षु: चक्षु:। इससे दोनों आँखों को स्पर्श करें।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। इससे दोनों कानों को स्पर्श करें।
ओ नाभि:। इससे नाभि को स्पर्श करें।
ओं हृदयम्। इससे हृदय को स्पर्श करें।
ओं कण्ठ:। इससे गले को स्पर्श करें।
ओं शिर:। इससे सिर को स्पर्श करें।
ओं बाहुभ्यां यशो बलम्। इससे दोनों भुजाओं को स्पर्श करें।
ओं करतल कर पृष्ठे। इससे दोनों हाथों के ऊपर तले स्पर्श करें।

अर्थ :-(ओं) हे परमात्मन् (वाक् वाक्) मेरी वाणी (यशो बलम्) यश और बल से युक्त हो। हे ईश्वर! (प्राण: प्राण:) मेरा प्राण (यशोबलम्) यश और बल से युक्त हो। हे परमात्मन्! मेरी आँखें, मेरे कान, मेरी नाभि, मेरा हृदय, मेरा कण्ठ, मेरा सिर, मेरी दोनों भुजाएं, मेरी हथेली और हाथ की पीठ, ये सब इन्द्रियाँ तथा अङ्ग यश और बल से युक्त हों।

अथ ईश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः

इसके बाद मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुलियों के अग्रभाग से अंगों पर जल छिड़कें।

ओं भूः पुनातु शिरसि। इस मन्त्र से सिर पर।
ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। इस से दोनों आँखों पर।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। इस से गले पर।
ओं महः पुनातु हृदये। इस से हृदय पर।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। इससे नाभि पर।
ओं तपः पुनातु पादयो :। इससे दोनों पैरों पर।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। इससे मस्तक पर।
ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र। इससे सब अंगों पर।

अर्थ :-(भूः) सत्स्वरूप व प्राणस्वरूप प्रभु (शिरसि) सिर में (पुनातु) पवित्रता करे।

(भुवः) चित्स्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रभु (नेत्रयोः) नेत्रों में ज्ञान इन्द्रियों में (पुनातु) पवित्रता करे।

(स्वः) आनन्दस्वरूप सुखप्रदाता प्रभु (कण्ठे) कण्ठ में (पुनातु) पवित्रता करे।

(महः) महान् प्रभु (हृदये) हृदये में (पुनातु) पवित्रता करे।

(जनः) सब को पैदा करने वाला प्रभु (नाभ्याम्) नाभि—जनन शक्ति के केन्द्र में (पुनातु) पवित्रता करे।

(तपः) दुष्टों को सन्तापकारी प्रभु (पादयोः) पैरों में (पुनातु) पवित्रता करे।

(सत्यं) सत्यस्वरूप प्रभु (पुनः) फिर (शिरसि) सिर में (पुनातु) पवित्रता करे।

(खं) आकाश की तरह व्यापक (ब्रह्म) महान् प्रभु (सर्वत्र) सब अंगों में (पुनातु) पवित्रता करे।

अथ प्राणायाम मन्त्राः

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः।
ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्।

[तैत्ति० आ० प्रपा० १० अनु० २७]

प्राणायाम मन्त्रों का अर्थ विचारपूर्वक उच्चारण करते हुए प्राणायाम करे। कम से कम तीन और अधिक से अधिक इक्कीस प्राणायाम करें।

इन मन्त्रों का अर्थ मार्जन मन्त्रों के शुरु में दे दिया है।

अथ अघमर्षणमन्त्राः

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
ओं सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

[ऋग्० मण्डल १० सू० १९० मं० १.२,३]

अर्थ—(ऋतं) प्राकृतिक नियम (सत्यं) जीव-सम्बन्धी नैतिक-सामाजिक नियम (अभीद्धात्) सब ओर से प्रकाशमान (तपसः) तपोमय परमेश्वर से (अध्यजायत) उत्पन्न हुए (ततः) उस प्रभु से ही (समुद्रः) समुद्र (अर्णवः) जलवाला हुआ ॥१॥

(अर्णवात्) जल वाले (समुद्रात्) समुद्र से (अधि) पीछे (संवत्सरः) क्षण, मुहूर्त, प्रहर, विशिष्ट काल (अजायत) उत्पन्न हुआ। (विश्वस्य) समस्त (मिषतः) निमेषोन्मेष अर्थात् हरकत करने वाले जगत् को (वशी) वश में रखने वाले परमेश्वर ने (अहोरात्राणि) दिन और रात को (विदधत्) बनाया ॥२॥

(धाता) संसार को धारण करने वाले प्रभु ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य तथा चन्द्रमा को (यथा पूर्वम्) पूर्व सृष्टि के समान (अकल्पयत्) बनाया।

(दिवं-पृथिवीं-अन्तरिक्षं च) द्युलोक-पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षलोक (अथो) तथा (स्वः) स्वर्गलोक को भी उसी प्रभु ने (अकल्पयत्) रचा ॥३॥

इस मन्त्र को बोल कर तीन आचमन करें।

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥

[इस मन्त्र का अर्थ पहले लिखा जा चुका है]

अथ मनसा परिक्रमा मन्त्राः

[प्रथम मन्त्र]

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

अर्थ—(प्राची) आगे बढ़ने की (दिक्) दिशा लक्ष्य है। इस प्राची दिशा में (अग्निः) अग्निस्वरूप, सबको आगे ले चलने वाला परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता व आदर्श है। (असितः) जो बन्धन रहित है वह (रक्षिता) इस मार्ग का रक्षक है। (आदित्याः) तेजस्वी सूर्य भगवान् (इषवः) प्रेरक व सहायक है। (तेभ्यः अधिपतिभ्यः नमः) उस अग्रणी भगवान् को नमस्कार है। (रक्षितृभ्यः नमः) रक्षक को नस्मकार है। (इषुभ्यः नमः) प्रेरक व सहायक को नमस्कार है। (एभ्यः नमः अस्तु) इन सबको नमस्कार है। (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हमको द्वेष करता है (यं वयं द्विष्मः) जिसको हम द्वेष करते हैं (तं वः जम्भे दध्मः) उस द्वेष करने वाले सब के दुश्मन को आप की दाढ़ में रखते हैं अर्थात् आप के न्याय पर सौंपते हैं, आप उस का दमन करें।

[द्वितीय मन्त्र]

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

अर्थ—(दक्षिणा) समृद्धि तथा ऐश्वर्य वृद्धि की (दिग्) दिशा है। इस दिशा में (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता व आदर्श है। (तिरश्चिराजिः) मर्यादा अति क्रमण न करने वाला अथवा कुटिल चाल पर शासन करने वाला (रक्षिता) रक्षक है। (पितरः) पालन-पोषण करने वाले अनुभवी बुजुर्ग (इषवः) प्रेरक व सहायक है।

[शेष मन्त्र भाग का अर्थ पूर्व मन्त्र के समान ही है]

[तृतीय मन्त्र]

ओं प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

अर्थ—(प्रतीची) वापिस आने की, ऐश्वर्य से पराङ्मुख अर्थात् वैराग्य धारण करने की, (दिक्) दिशा है। इस दिशा में (वरुणः) वरणीय अथवा सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता व आदर्श है। (पृदाकुः) संग्राम के लिए=विषयों का उत्साह से आह्वान करने वाला इस दिशा का (रक्षिता) रक्षक है। (अन्नं) विविध अन्न (इषवः) प्रेरक व सहायक हैं।

'तेभ्यो नमो' आदि के अर्थ पूर्ववत्।

[चतुर्थ मन्त्र]

ओं उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

अर्थ—(उदीची) ऊपर मुँह उठाने की अर्थात् शान्ति के अन्वेषण की अथवा (भावनाओं के ऊर्ध्वीकरण की)। (दिक्) दिशा है। इस दिशा में (सोमः) शान्त स्वरूप भगवान् (अधिपतिः) अधिष्ठाता व आदर्श है। (स्वजः) अशुभ भावनाओं को अच्छी तरह दूर फेंकने वाला अथवा निरन्तर क्रियाशील इस दिशा का (रक्षिता) रक्षक है। (अशनिः) अग्नि, जिस की ज्वाला हमेशा ऊपर की ओर ही जाती है (इषवः) प्रेरक हैं।

(शेष मन्त्र पूर्ववत्)

[पंचम मन्त्र]

ओं ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु । यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

अर्थ—(ध्रुवा) स्थिरता की (दिक्) दिशा है। इस दिशा में (विष्णुः) यज्ञरूप अथवा व्यापक परमात्मा अधिष्ठाता है। (कल्माषग्रीवः) कर्म में प्रतिष्ठित होने को महत्वपूर्ण समझने वाला अर्थात् काली गर्दन वाले पाप रूपी सर्पों से (रक्षिता) रक्षक है (वीरुधः) नीचे से ऊपर उठने वाले वृक्ष आदि (इषवः) प्रेरक हैं।

(तेभ्यो नमो आदि का अर्थ पूर्ववत्)

[छटा मन्त्र]

ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥

अर्थ—(ऊर्ध्वा) सर्वोच्च स्थिति प्राप्त करने की (दिक्) दिशा है। इस दिशा में (बृहस्पतिः) बड़ों से भी बड़ा ईश्वर (अधिपतिः) अधिष्ठाता व आदर्श है (श्वित्रः) शुद्ध, सात्विक अन्तःकरण वाला, इस दिशा का (रक्षिता) रक्षक है (वर्ष) वर्षा की बूंदें (इषवः) प्रेरक हैं।

(शेष मन्त्र का अर्थ पूर्ववत्)

[अथ उपस्थानमन्त्राः]

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥ [यजु० अ० ३५। मं० १४]

अर्थ—(वयं) हम (तमसः परि) अन्धकार से परे (उत्तरं स्वः) अधिक उत्कृष्ट प्रकाश को (उत्-पश्यन्तः) उत्कण्ठा पूर्वक देखते हुए (देवत्रा देवं) देवों के देव, ज्योतिर्मय पदार्थों में सब से अधिक ज्योतिर्मय, सर्व आनन्द दाता (उत्तमं-ज्योतिः) सर्वोत्कृष्ट प्रकाश स्वरूप (सूर्य) सब के अभिसरणीय-प्राप्त करने योग्य प्रभु को (अगन्म) प्राप्त हुए हैं।

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥२॥ [यजु० अ० ३३। मन्त्र ३१]

अर्थ—(त्यं) उस प्रसिद्ध (जातवेदसं) सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अथवा सकल जगत् को जानने वाले (देवं) स्वयं देदीप्यमान तथा सब को आनन्द प्रदान करने वाले (सूर्यं) सर्व प्रेरक तथा सब के द्वारा प्राप्त करने योग्य परमेश्वर को (केतवः) परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान कराने वाली झंडियाँ (उ) निश्चय से (उद्वहन्ति) जताती व पहुँचाती हैं। (विश्वाय) सब के प्रति (दृशे) परमेश्वर को प्रत्यक्ष कराने के लिए।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुश्षच स्वाहा ॥३॥ [यजु० अ० ७। मं० ४२]

अर्थ—(देवानां) दिव्यगुणयुक्त विद्वानों अथवा उपासकों का (अनीकं) जीवन व बलरूप तथा (चित्रं) अद्भुत रूप वाला पूजनीय परमेश्वर (उद्गात्) हमारे हृदयाकाश में उदित हुआ है। वह प्रभु (मित्रस्य) सूर्य का (वरुणस्य) वायु का तथा (अग्नेः) अग्नि का (चक्षुः) मार्ग दर्शक है। वह (द्यावापृथिवी) द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक को (आप्राः) व्याप रहा है। (जगतः) चर अर्थात् प्राणी जगत् का (तस्थुषश्चः) अचर अर्थात् जड़ जगत् का (आत्मा) आत्मा वही (सूर्यः) सब से अभिसरणीय अर्थात् प्राप्त करने योग्य है। (स्वाहा) उसके प्रति हम सर्वस्व का अर्पण करते हैं।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥

[यजु० अ० ३६। मं० १४]

अर्थ—(चक्षुः) सर्व द्रष्टा अथवा कर्तव्य कर्म का दिखाने वाला (देवहितं) देवों—आनन्द दान अथवा उपकार करने वालों का हितकारी (शुक्रं) शुद्ध, पवित्र (तत्) वह परमेश्वर (पुरस्तात्) हमारे सामने (उच्चरत्) उदय हुआ है, अपने स्वरूप को प्रकट कर रहा है। उसकी कृपा से हम (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) जीवित रहें (शतं शरदः पश्येम) सौ तक देखते रहें (शतं शरदः शृणुयाम) सौ वर्ष तक सुनते रहें। (शतं शरदः प्रब्रवाम) सौ वर्ष तक प्रवचन करें (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः स्याम) अदीन रहें, किसी के सामने दीनता के वचन न बोलें। (शरदः शतात् भूयश्च) सौ वर्ष से भी अधिक देखते, सुनते, प्रवचन करते तथा अदीन हो कर जीवित रहें।

।। गायत्री मन्त्र ।।

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

यजु० अ० ३६ । मं० ३ ।। ऋग्० मण्डल ३ । सू० ६२ । मं० १०]

(ओं) परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है ।

महा व्याहृतियों का अर्थ—वह परमेश्वर ।

[क]—(भूः) सत्-शुभ (भुवः) चित् (स्वः) आनन्दस्वरूप है ।

[ख]—(भूः) पृथ्वी लोक (भुवः) अन्तरिक्ष लोक तथा (स्वः) द्युलोक का अधिष्ठाता है ।

[ग]—(भूः) सब प्राणियों को जीवन देने वाला तथा प्राणों से भी प्रिय ।

(भुवः) धर्मात्माओं के दुखों को दूर करने वाला ।

(स्वः) सब जगत् में व्यापक हो कर सब को नियम में रखने वाला तथा सुख स्वरूप है ।

अर्थ—(सवितुः) सब जगत् के उत्पादक, सकल ऐश्वर्य के स्वामी चराचर के हृदय में वर्तमान हो कर निरन्तर प्रेरणा करने वाला (देवस्य) दिव्यगुणयुक्त, आनन्दैकरस तथा सुखों के प्रदान करने वाले परमेश्वर के (तत्) उस (वरेण्यं) वरने योग्य—सर्वश्रेष्ठ (भर्गः) पापविनाशक विशुद्ध स्वरूप का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं ।

(यः) जो सविता देव (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) सब बुरे कर्मों से अलग करके, सदा सन्मार्ग में प्रेरित करता है ।

(समर्पणम्)

हे ईश्वर दयानिधे भवत् कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा। धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

अर्थ—(हे ईश्वर दयानिधे) हे ईश्वर दया के भण्डार! (भवत् कृपया) आप की कृपा से (अनेन) इस (जप उपासंना आदि कर्मणा) जो-जो जाप, उपासना आदि उत्तम कर्म हम लोगों ने किये हैं या करते हैं वे सब आपके समर्पण हैं जिस से हम लोग आप को प्राप्त हो के (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षाणां) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों की (सिद्धिः) सिद्धि (नः) हमें (सद्यः) शीघ्र ही (भवेत्) होवे।

(इति समर्पणम्)

[नमस्कार मन्त्रः]

ओं नमः सम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।

[यजु० अ० १६। मन्त्र ४१॥]

अर्थ—(शम्भवाय च) शान्तरूप प्रभु के लिए (नमः) नमस्कार (च) और (मयोभवाय) आनन्दस्वरूप प्रभु को (नमः) नमस्कार। (शंकराय) शान्ति प्रदान करने वाले प्रभु को (नमः) नमस्कार (च) और (मयस्कराय) आनन्द देने वाले प्रभु को (नमः) नमस्कार। (शिवाय) कल्याण रूप प्रभु को (नमः) नमस्कार (शिवतराय च) और अत्यन्त मंगलमय प्रभु के प्रति (नमः) नमस्कार हो।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

[अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपसना मंत्राः]

सब यज्ञों तथा संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ और अर्थ द्वारा एक विद्वान् पुरुष ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना स्थितचित्त हो कर परमात्मा में ध्यान लगा के करें और सब लोग उसमें ध्यान लगा कर सुनें और विचारें—

ओं विश्वानि देव सविर्दुरितानि परासुव। यद भद्रं तन्न आसुव ॥१॥ [यजु० अ० ३। मन्त्र ३]

अर्थ—हे (सवितः), सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त, (देव) शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये। (यत्) जो (भद्रं) कल्याणकारक गुण कर्म और स्वभाव तथा पदार्थ हैं, (तत्) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त कराइये।

ओं हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥ [यजु० अ० १३। मन्त्र ४]

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) प्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने वाले सूर्य चन्द्र आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्णजगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था। जा (अग्रे) सब संसार के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था। (सः) वह (इमां) इस पृथवीं) भूमि (उत्) और (द्यां) सूर्य आदि का

(दाधार) धारण कर रहा है। हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) भक्ति विशेष किया करें।

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥ [यजु. अ. २५। मन्त्र १३]

अर्थ—(यः) जो (आत्मदा) आत्मज्ञान का दाता (बलदा) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देने वाला (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं, और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतं) मोक्ष सुखदायक है, (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि (दुःखों) का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने वाले परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति विशेष करें, अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें।

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ [यजु. अ. २३। मं. ३]

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एकइत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (यः) जो—(यस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि

प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग—उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य के देने हारे परमात्मा के लिए (हविषा) अपनी सकल-उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

ओं येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वस्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥ [यजु. अ. ३२। मं. ६]

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्यादि (च) और पृथिवी) भूमि को (दृढ़ा) धारण किया (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक-लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मान युक्त अर्थात् जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण कर्ता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥ [ऋ० मण्डल १०। सू० १२१। मं० १०]

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए भूगोलादि जगत् को बनाने वाला और (परिता) व्यापक (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार

करते हैं, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हो हम लोग भक्ति करें, (ते) आप का (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा कर, (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिससे (वयं) हम लोग (रयीणाम्) धन ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी) (स्याम) होवें।

ओं स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥

[यजु० अ० ३२। मं. १०]

अर्थ—हे मनुष्यो! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धु) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को, (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतं) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होवे (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम ॥८॥

[यजु० अ० ४०। मन्त्र १६]

अर्थ— हे (अग्ने) स्वप्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिस से (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या युक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये । और (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिलता युक्त (एनः) पाप रूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये, इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) विविध प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्ति) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें । और सर्वदा आनन्द में रहें ।

-o-o-o-o-

[अथ स्वस्तिवाचनम्]

(अग्नि की स्तुति)

ओं अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥ ॥१॥ [ऋ० १।१।१]

अर्थ—(पुरोहित) सामने विद्यमान (यज्ञस्य देवं) यज्ञ के प्रकाशक और स्वामी (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारं) सब अभिष्ट पदार्थों के देने वाले (रत्नधातमम्) सुन्दर रत्नादि पदार्थों के धारण करने वाले (अग्नि) परमात्मा अथवा भौतिक अग्नि की (ईडे) स्तुति करता हूँ ।

(पिता पुत्र भाव)

ओं स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥२॥ [ऋ० १।१।९]

अर्थ—(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर (सः) वह आप (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिए पिता के समान (नः) हमारे लिए (सु+उप+अयनः भव) आसानी से पास जाने योग्य होइये। और (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख शान्ति के लिए (सचस्व) अपने साथ जोड़िये।

(दिव्य विभूतियाँ)

ओं स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥३॥ [ऋ० ५।५१।११]

अर्थ—(अश्विनौ) अध्यापक और उपदेशक (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुखशान्ति और कल्याण (मिमीताम्) करें (भगः) सेवनीय वायु (स्वस्ति) कल्याण का सम्पादन करें। (अदितिः) अदीन देव माता वेद विद्या या भूमि (अनर्वणः) आलस्य से रहित हम लोगों का (स्वस्ति) कल्याण करे—(पूषा) पुष्टि करने वाले दुग्धादि पदार्थ तथा (असुरः) प्राणों के देने हारे मेघादि (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) देवें (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष और पृथ्वी (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान के साथ (नः स्वस्ति) हमारे लिए कल्याणकारक होवें।

ओं स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥ [ऋ० ५।५१।१२]

अर्थ—(स्वस्तये) कल्याण के लिए (वायुं) वायु के समान वेगवान तथा (सोमं) समुद्र के समान आह्लाददायक परमेश्वर की (उपब्रवामहै) स्तुति करते हैं, (यः भुवनस्य पतिः) जो सारे संसार का स्वामी है वह (स्वस्ति) हमारे लिए कल्याणकारक हो । (सर्वगणं) सब प्राणियों के आधार (बृहस्पति) बड़े २ ब्रह्माण्डों या वेद ज्ञान के रक्षक परमात्मा की (स्वस्तये) कल्याण के लिए स्तुति करते हैं । (आदित्यासः) अदिति वेद विद्या या भूमि माता के पुत्र (नः) हमारे लिए (स्वस्तये) कल्याणकारक (भवन्तु) होवें ।

ओं विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥ [ऋ० ५।५१।१३]

अर्थ—(अद्य) आज (विश्वेदेवाः) सब देव (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए हों (वैश्वानरः) सब नरों का हितकारी (वसुः) सब को निवास देने वाला (अग्निः) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए हों । (ऋभवः) बुद्धिमान् ज्ञानी (देवाः) देव लोग (स्वस्तये) मंगल के लिए (अवन्तु) रक्षा कर (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला परमात्मा या आचार्य (स्वस्ति) सुख के लिए (अंहसः) पाप से (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे ।

ओं स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

[ऋ० ५।५१।१४]

अर्थ—(मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु (स्वस्ति) सुखमय हों (रेवतिपथ्ये)) धन के मार्ग में (स्वस्ति) कल्याण हो (इन्द्रश्च अग्निश्च) वायु और विद्युत् (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण करें (अदिते) हे अखण्डव्रत परमेश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करो।

ओं स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥७॥ [ऋ० ५।५१।१५]

अर्थ—(सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य (स्वस्ति पन्थाम्) कल्याण के मार्ग के (अनुचरेम) अनुगामी हों, और (पुनः) फिर (ददता) दान देने वाले वैश्यों=(अघ्नता) अहिंसक=क्षत्रियों और (जानता) ज्ञानी=ब्राह्मणों का (संगमेमहि) संग करें।

ओं ये देवानां यज्ञियायज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥ [ऋ० ७।३५।१५]

अर्थ—(ये) जो (यज्ञियानां देवानाम्) पूजनीय विद्वानों में भी (यज्ञियाः) पूजनीय हैं—(मनोः यजत्राः) मननशील मनुष्य समाज के पूज्य हैं (अमृताः) अमर कीर्ति वाले (ऋतज्ञाः) सत्यधर्म के जानने वाले महात्मा लोग हैं (ते) वे (अद्य) आज (नः) हमको (उरुगायम्) सबसे गाये गये प्रशंसित ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश

करें (यूयं) आप सब लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायों से—(सदा) प्रति समय (नः) हमारी (पात) रक्षा करो।

ओं येभ्यो माता मधुमतपिन्वते पयः पीयुषं द्यौरदितिर-द्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥९॥ [ऋ० १०।६३।३]

अर्थ—(येभ्यः) जिनकी सहायता से (माता) माता के समान पृथिवी (मधुमतपयः) माधुर्ययुक्त जल को (पिन्वते) बहा रही है और (अदितिः) अखण्ड (अद्रिबर्हाः) मेघों से आच्छादित (द्यौः) अन्तरिक्ष लोक (पीयुषम्) अमृत के समान जल को दे रहा है (तान्) उन (उक्थशुष्मान) बहुबलशाली (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि का आहरण करने वाले (स्वप्नसः) संसार का कल्याण रूप उत्तम कर्म करने वाले (आदित्यान्) सूर्य किरणों को (स्वस्तये) कल्याण के लिए (अनुमदा) प्राप्त कराइये।

ओं नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृत-त्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥१०॥ [ऋ० १०।६३।४]

अर्थ—(नृचक्षसः) मनुष्यों के कर्मों का निरीक्षण करने वाले (अनिमिषन्तः) कभी आँखें न मीचने वाले (देवासः) विद्वान् लोगों ने (अर्हणा) योग्यता से (बृहद्) बड़े (अमृतत्वम्) अमर पद को (आनशुः) प्राप्त किया है। जो (ज्योतीरथाः) ज्ञानरूपी रथ पर चढ़ कर सर्वत्र विचरने वाले (अहिमायाः) अदम्य बुद्धि वाले (अनागसः) पाप से रहित लोग—(दिवः) द्युलोक के (वर्ष्माणम्) उच्चस्थान में (वसते) निवास करते हैं। वे (स्वस्तये) हमारे लिए कल्यणाकारी हों।

ओं सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिविक्षयम् । ताँआविवास नमसा सुवृक्तिभिमहो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥११॥ [ऋ० १०।६३।५]

अर्थ—(ये) जो (सम्राजः) सर्वविध प्रकाशमान (सुवृधः) अच्छी प्रकार से वृद्धि करने वाले (यज्ञम्) परोपकार रूपी यज्ञ कार्य में (आययुः) प्रवेश करते हैं वे (अपरिह्वृता) कुटिलता से रहित—स्वभाव वाले (दिवि) द्युलोक में (क्षयम्) निवास को (दधिरे) धारण करते हैं। (तान्) उन (आदित्यान्) अदिति= देव माता के पुत्रों को (नमसा) नम्रतादि श्रेष्ठ गुणों के कारण (सुवृक्तिभिः) अच्छी स्तुतियों से (महः) बड़प्पन (आविवासः) सब तरह प्राप्त हो जाता है। वे (स्वस्तये) उत्तम स्थिति या कल्याण के लिए (अदितिम्) अखण्ड नियम या सच्चाई को ही ग्रहण करते हैं।

ओं कोवः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन । को वोऽध्वरं तु विजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥ [ऋ० १०।६३।६]

अर्थ—हे (विश्वेदेवासः) सब देवो! (मनुषः) मननशील पुरुषो! (यतिष्ठन) जितने भी तुम हो (वः) उन तुम लोगों के लिए (यम्-स्तोमम्) जिस स्तुति समूह को (जुजोषथ) तुम सेवन करते हो उसको (कः राधति) कौन सिद्ध करता है? हे (तु विजाताः) अनेक प्रकार के जन्म वालों (कः) कौन (वः) तुम्हारे लिए (अध्वरम्) यज्ञ को (अरम्-करत्) अलंकृत करता है। (यः) जो यज्ञ (अंहः) पापों को (अति) हटाकर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (नः) हमको (पर्षत्) पार ले जाता है।

ओं येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः । त आदित्या अभयं शर्मयच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१३॥ [ऋ० १०।६३।७]

अर्थ—(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए (समिद्धाग्निः) नित्याग्नि होत्र करने वाला (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मनोयोग पूर्वक—(सप्तहोतृभिः) सात होताओं [आत्मा, बुद्धि और पाँच ज्ञानेन्द्रियों] के साथ (प्रथमाम्) मुख्य (होत्राम्) यज्ञ को (आयेजे) करता है (ते) वे तुम (आदित्याः) हे अखण्ड व्रतधारियो! या आदित्य ब्रह्मचारियो! (अभयमूशर्म) भय रहित सुखको (यच्छत्) दिलाओ और (नः) हमारे (सुपथा) सुन्दर धर्म मार्गों को (स्वस्तये) कल्याण के लिए (सुगा=सुगानि) सुगम (कर्त्त) करो।

ओं य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः । ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥ [ऋ० १०।६३।८]

अर्थ—(ये) जो (प्रचेतसः) ज्ञानी (मन्तवः) और मननशील (देवासः) विद्वान् लोग (स्थातुः) स्थावर=घर, वृक्ष, पहाड़ आदि—और (जगतः) जंगम=गतिशील (विश्वस्य जगतः) सम्पूर्ण विश्व के ऊपर (ईशिरे) राज्य करते हैं (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिए (नः) हमें (कृतात्) किये हुए शारीरिक, और (अकृतात्) न किये हुए मानसिक, (एनसः) पाप से (परि) हटाकर (पिपृत) रक्षा करें।

ओं भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥ [ऋ० १०।६३।९]

अर्थ—(भरेषु) संग्रामों में, वा सभाओं में (सुहवम्) आसानी से बुलाये जा सकने वाले या सहज में पुकार सुनने वाले (अंहोमुचम्) पाप से छुड़ाने वाले (सुकृतम्) सत्कर्मी (दैव्यं जनम्) दिव्यशक्ति सम्पन्न या विद्वान् जनों के हितकारी व्यक्ति (इन्द्रम्) सेनापति या परमात्मा को (हवामहे) बुलाते हैं और (सातये) अन्नादि की प्राप्ति के लिए और (स्वस्तये) कल्याण के लिए (अग्निम्) अग्नि (मित्रम्) सूर्य (भगम्) प्रशंसनीय (वरुणम्) जल (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथ्वी, और (मरुतः) वायु—इन देवों को (हवामहे) बुलाते हैं।

ओं सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१६॥ [ऋ० १०।६३।१०]

अर्थ—(स्वस्तये) कल्याण के लिए (सुत्रामाणम्) अच्छी प्रकार से रक्षा करने वाली (पृथिवीम्) विस्तृत=फैली हुई (द्याम्) शुभ प्रकाश युक्त (अनेहसम्) उपद्रव रहित (सुशर्माणं) अच्छा सुख देने वाली (अदितिम्) न टूटने वाली (सुप्रणीतिम्) जो बड़ी कुशलता से बनाई गई है (स्वरित्राम्) सुन्दर वल्लियों वाली (अनागसम्) निर्दोष (अस्रवन्तीम्) छिद्र रहित (दैवीम् नावम्) दिव्य नौका पर (आरुहेम) चढ़ें।

ओं विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥१७॥ [ऋ० १०।६३।११]

अर्थ—(विश्वे) हे सब (यजत्राः) पूजनीय विद्वानों ! आप (ऊतये) हमारी रक्षा के लिए (अधिवोचते) उपदेश कीजिये। (अभिहुतः) कुटिलतायुक्त (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वम्) रक्षा करो। (देवाः) हे देवो ! (वः) तुम (शृण्वतः) सुनते हुओं को (सत्यया-देवहूत्या) सच्ची वेदवाणी द्वारा (अवसे) आत्मरक्षा के लिए और (स्वस्तये) कल्याण के लिए (हुवेम) हम बुलाते हैं।

ओं अपामीवामपविश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रा-मघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८॥ [ऋ० १०।६३।१२]

अर्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (अमीवाम्) रोगादि को (अप) हटाओ (विश्वाम्) सब (अनाहुतिम्) अयज्ञीयभावना को (अप) हटाओ (अरातिम्) दान न करने के भाव और (अघायतः) पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की (दुर्विदत्राम्) दुष्टबुद्धि को (अप) हटाओ। (द्वेषः) द्वेष भावना को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (युयोतन) पृथक् करो (नः) हमें (स्वस्तये) कल्याण के लिए (उरु शर्म) बहुत सुख (यच्छत) प्रदान करो।

ओं अरिष्टः समर्तो विश्वा एधते प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९॥ [ऋ० १०।६३।१३]

अर्थ—(आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारी विद्वानो! (यम्) जिस पुरुषसमूह को (सुनीतिभिः) सुन्दर नीतियों से (विश्वानि दुरिता) सब पापों वा संकटों को (अति) लंघाकर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (नयथ) अच्छे मार्ग पर ले जाते हो (सः) वह (विश्वामर्त्तः) सारा मनुष्य समाज (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न होता हुआ (एधते) संसार में उन्नति करता है, और (धर्मणःपरि) धर्म पालन के अनन्तर (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से (प्रजायते) फलता फूलता है।

ओं यं देवासोऽवथ वाजसातौ शं शूरसाता मरुतो हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्ते ॥२०॥ [ऋ० १०।६३।१४]

अर्थ—(मरुतः देवासः) हे गतिशील विद्वानो! (वाजसातौ) अन्न की प्राप्ति में (शूरसाता) संग्राम में (हितेधने) इष्टधन के लिए (यम्) जिस (रथम्) रथ की (अवथ) आप रक्षा करते हैं। उस प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही यात्रा करने योग्य (इन्द्रसानसिम्) यन्त्र विद्या के ज्ञाता विद्वानों से अधिष्ठित (अरिष्यन्तम्) निर्विघ्न रूप से चलने वाले (रथम्) रथ पर (स्वस्तये) कल्याण के लिए (आरुहेम) हम चढ़ें।

ओं स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥
[ऋ० १०।६३।१५]

अर्थ—(मरुतः) हे गतिशील विद्वानो ! (नः) हमारे लिए (पथ्यासु) मार्ग के योग्य=जल वाले देशों में और (धन्वसु) जलरहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करें। (अप्सु) जलमय प्रदेशों में और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) संग्राम में (स्वस्ति) कल्याण करें। (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु योनिषु) पुत्रों को उत्पन्न करने वाली योनियों में (स्वस्ति) कल्याण करें (राये) धनादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (स्वस्ति) कल्याण को (दधातन) धारण करो।

ओं स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति। सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥२२॥
[ऋ० १०।६३।१६]

अर्थ—(या) जो पृथ्वी (प्रपथे) जाने वालों के अच्छे मार्ग के लिए (स्वस्ति-इत-हि) कल्याणदायक ही होती है, जो (श्रेष्ठा) बहुत सुन्दर (रेक्णस्वस्ति) धनधान्य से पूर्ण है, तथा (वामम्) हमारे लाभ के लिए (अभिएति) प्राप्त होती है (सा) वह पृथिवी (नः) हमारे (अमा) घर में (सा उ) वही (अरणे) जंगल में (निपातु) रक्षा करे, (देवगोपा) विद्वानों से रक्षित (स्वावेशा) सुन्दर निवास देने योग्य (भवतु) होवे।

ओं इषेत्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघ शॅसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात् बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३॥
[यजु० अ० १। मं० १]

अर्थ—हे गोजाति ! (त्वा) तुझ को (इषे) अन्नादि के लिए और (ऊर्जे) बल आदि के लिए सेवन करता हूँ (अघ्न्याः) हे अवध्य गायो ! (वायवःस्थ) तुम वायु के समान प्राण देने वाली हो (सवितादेवः) उत्पादक प्रभु या नृप (वः) हम को (श्रेष्ठतमायकर्मणे) सर्व उत्तम कर्म यज्ञ के लिए (प्रार्पयतु) तुम्हें प्राप्त कराएँ (इन्द्राय) ऐश्वर्य के (भागम्) भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ तुम (प्रजावतीः) अच्छे बछड़े-बछड़ियों वाली (अनमीवाः) सब रोगों तथा भयों से रहित (अयक्ष्माः) तपेदिक आदि से रहित होओ। (वः) तुम्हारा (स्तेन) चोर या डाकू (मा ईशत) स्वामी न होवे (मा अघशंसः) पाप चिन्तन करने वाला भी तुम्हारा स्वामी न हो (अस्मिन् गोपतौ) इस धर्मात्मा गोरक्षक के पास तुम (ध्रुवा) चिरकाल तक रहने वाली (बह्वीः) बहुत मात्रा में (स्यात्) होओ। हे राजा, या प्रभु तू (यजमानस्य) हम यज्ञकर्त्ताओं के (पशून्) पशुओं की (पाहि) रक्षा कर।

ओं आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद्वृधेऽसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥२४॥
[यजु० २५।१४]

अर्थ—(नः) हमें (भद्राः) कल्याणकारक (क्रतवः) संकल्प (विश्वतः) सब ओर से (आयन्तु) प्राप्त हों। और वे संकल्प—

(अदब्धासः) बे चूक और (अपरीतासः) बिना रुकावट के (उद्भिदः) ऊपर बढ़ाने वाले हों (यथा) जिस से (देवाः) देव लोग (नः) हमारी (सदं-इत्) सदा ही (वृधे) वृद्धि के लिए और (अप्रायुवः) प्रमाद रहित हो कर (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (रक्षितारः) रक्षा करने वाले (असन्) बने रहें।

ओं देवानां भद्रा सुमति ऋजूयतां देवानाँ रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानँ सख्यमुपसेदिमावयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५॥ [यजु० २५।१५॥]

अर्थ—(ऋजूयताम्) सरल स्वभाव वाले (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याणी (सुमतिः) अच्छी बुद्धि और (देवानाम्) देवों का (रातिः) दान भाव (नः-अभि) हमारी ओर (निवर्त्तताम्) सदा चला आवे (वयम्) हम (देवानाम) देवों के (सख्यम्) मित्र भाव को (उपसेदिम) प्राप्त हों। जिस से कि (देवाः) देव लोग (नः) हमारी (आयुः) अवस्था की (जीव से) दीर्घावस्था पर्यन्त जीने के लिए (प्रतिरन्तु) बढ़ावें।

ओं तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥ [यजु० २५।१८॥]

अर्थ—(वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षार्थ (जगतः) जंगम और (तस्थुषः) स्थावर के (पतिम्) स्वामी (धिमञ्जिन्वम्) बुद्धि को बढ़ाने वाले (तम्) उस (ईशानम) प्रभु को (हमहे) पुकारते हैं। (यथा) जिसे से कि वह (पूषा) पोषक परमात्मा (नः) हमारे (वेदसाम्) ज्ञानों और धनों की (वृधे) वृद्धि के लिए और (स्वस्तये) समृद्धि के लिए (अदब्धः) अचूक (रक्षिता) रक्षक और (पायुः) पालक (असत्) होवे।

ओं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७॥ [यजु० ५२।१९॥]

अर्थ—(वृद्धश्रवाः) बहुत यश वाला (इन्द्रः) सेनापति या क्षत्रिय समाज (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याणकारक हो। (विश्ववेदाः) सब प्रकार के धनों से युक्त (पूषा) सब वर्णों का पोषक वैश्य वर्ग (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याणकारक हो, (अरिष्टनेमिः) सुदृढ़धुरि वाला बलवान् (ताक्ष्र्यः) अश्व तुल्य गति वाला अनथक शूद्रवर्ग (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) कल्याण कारक हो (वृहस्पतिः) वेदवाणी का रक्षक ब्राह्मण वर्ग (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) धारण करे।

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा ,भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८॥ [यजु० २५।२१॥

अर्थ—(यजत्राः) पूजनीय (देवाः) विद्वानों हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) श्रेष्ठ (शृणुयाम) सुने (अक्षभिः) आँखों से (भद्रम्) शुभ (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ़ (अंगैः) अङ्गों से (तुष्टुवाँ ँ सः) प्रभु की स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (देवहितम्) देवों के लिए सुखदायक (यत्) जो (आयुः) जीवन है उसे—(वि- अशेमहि) प्राप्त करें।

ओं अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि ॥२९॥ [साम० १।१।१।

अर्थ—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमात्मन् (वीतये) ज्ञानदान के लिए और—(हव्यदातये) अन्नादि पदार्थों के लिए (गृणानः) प्रशंसित हुए आप (आयाहि) हमें प्राप्त होइये। आप (होता) शुभ पदार्थों के दाता बन (बर्हिषि) हमारे यज्ञादि शुभ कार्यों में (निसत्सि) उपस्थित होइये।

ओं त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥३०॥ [साम० १।१।२॥]

अर्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभु (त्वम्) तू (विश्वेषां) सब (यज्ञानाम्) यज्ञादि शुभ कार्यों का (होता) उपदेष्टा है (देवेभिः) दिव्य (मानुषे-जने) विचारशील नगरों में (हितः) उपस्थित हो जाते हो।

ओं ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥३१॥

[अथर्व० १।११।१॥

अर्थ—(ये) जो (त्रिषप्ताः) इक्कीस=महाभूत ५, ज्ञानेन्द्रियाँ ५, कर्मेन्द्रियाँ ५, प्राण ५, तथा एक अन्तःकरण (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परियन्ति) सब तरफ व्याप्त है। (तेषाम्) उनके (बला) बलों को (वाचस्पतिः) वेद वाणी का पति=परमेश्वर (अद्य) आज (मे-तन्वा) मेरे शरीर में (दधातु) धारण करावे।

" इति स्वस्ति वाचनम् "

॥ अथ शान्तिप्रकरणम् ॥

(शान्ति की याचना)

ओं शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥ [ऋ० ७।३५।१]

अर्थ—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) रक्षण आदि के द्वारा (नः) हमारे लिए (शम्) सुख कारक (भवताम्) होवें। (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं के प्रदाता (इन्द्रा-वरुणा) बिजली और जल (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हों (इन्द्रासोमा) विद्युत् और औषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (शम्) रोगों के नाशक और (योः) भयों के निवर्त्तक हों। (इन्द्रा-पूषणा) बिजली और वायु (नः) हमारे लिए (शम्) सुख देवें।

ओं शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तुशन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥ [ऋ० ७।३५।२]

अर्थ—(शम्) हमारे लिए (भगः) ऐश्वर्य (शम्) सुखदायक हो (उ) और (नः) हमारे लिए (शंसः) प्रशंसा (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो (पुरन्धिः) धारण करने वाली बुद्धि (नः शंसन्तु) हमारे लिए शान्ति दायक हो, (उ) और (रायः) ऐश्वर्य (नः शं सन्तु) हमारे लिए शान्ति दायक हों। (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शं सः) कथन हमें सुखकारक हों (पुरुजातः) बहुत प्रसिद्ध (अर्य्यमा) न्यायकारी (नः शं सन्तु) हमारे लिए कल्याणकारक हो।

ओं शन्नो धाता शमु धर्त्तानो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३॥ [ऋ० ७।३५।३॥]

अर्थ—(धाता) सबका पोषक परमात्मा (नः शम्) हमारे लिए शान्तिदायक हो (उ) और (धर्त्ता) धारण करने वाला प्रभु (नः शं अस्तु) हमें शान्तिदायक हो (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अमृतसम अन्नादि पदार्थों के साथ (नः शं भवतु) हमारे लिए शान्ति करने वाली हो (बृहती) विस्तृत (रोदसी) भूमि और आकाश (शम्) शान्ति कारक हो (अद्रिः) पर्वत (नः शम्) हमें शान्ति देने वाले हों (देवानाम्) देवों के (सुहवानि) सुन्दर स्तुति गान (न शं सन्तु) हमारे लिए शान्तिदायक हों ।

ओं शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४॥ [ऋ० ७।३५।४॥]

अर्थ—(ज्योतिः अनीकः) प्रकाश की किरणें ही जिसकी सेना है ऐसा (अग्निः) (नः शं अस्तु) हमें शान्तिदायक हो (मित्रावरुणौ) प्राण और उदानवायु (नः शं) हमें शान्तिदायक हों (अश्विनौ) अध्यापक और उपदेशक (शम्) शान्तिदायक हों (सुकृताम्) सत्कर्म (नः शं सन्तु) हमें शान्तिदायक हों (इषिरः) शीघ्र गमनशील (वातः) वायु (नः) हमारे लिए (शम्) सुखरूप होकर (अभिवातुः) सब तरफ से बहे ।

ओं शंनो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥ [ऋ० ७।३५।५॥]

अर्थ—(पूर्वहूती) पूर्व स्तुति किये हुए (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक (नः शम्) हमारे लिए शान्तिदायक हों (अन्तरिक्षम्) सूर्य चन्द्रमादि को धारण करने वाला आकाश (नः) हमारे (दृशये) नेत्र दृष्टि के लिए (शम्-अस्तु) सुखदायक हो (वनिनः) वन्य (ओषधीः) औषधियाँ (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक (भवन्तु) होवें (रजसः पतिः) लोकों का स्वामी (जिष्णुः) जयशील परमात्मा (नः शम्) हमें शान्ति देवे।

ओं शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः। शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥ [ऋ० ७।३५।६॥]

अर्थ—(देवः) प्रकाशयुक्त (इन्द्रः) सूर्य (वसुभिः) अपने बसाने वाले गुणों के साथ (नः शम् अस्तु) हमारे लिये सुखदायक हों—(आदित्येभिः) सूर्य किरणों के द्वारा (सुशंसः) अच्छी कीर्ति वाला (वरुणः) जल (शम्) सुखकारक हो। (रुद्रः) रुद्ररूप परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देनेवाले अपने गुणों के साथ (नः शम्) हमारे लिए सुखदाता हो (त्वष्टा) विवेचन विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से निकली प्रार्थना को (इह) इस स्थान पर (शृणोतु) सुनें। (जलाषः) शान्तस्वरूप परमात्मा (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हो।

ओं शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥ [यजु० अ० १५।२२॥ऋ० ७।३५।७॥]

अर्थ—(नः) हमारे लिए (सोमः) परमैश्वर्य वाला प्रभु (शम्-भवतु)

सुखदायक हो (ब्रह्म) वेद ज्ञान (नः शम्) हमें सुखदायक (ग्रावाणः) यज्ञ तथा मकानादि में लगे हुए पत्थर (नः शम्) हमें सुख देने बाले हों (उ) और विध यज्ञ (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हों (स्वरूणां) यज्ञ स्तम्भों के (मितयः) परिमाण (नः शम्) हमें सुखदायक (भवन्तु) हो। (प्रस्वः) औषधियाँ (नः शम्) हमें सुखदायक हों (उ) और (वेदिः) यज्ञ वेदि (शं-अस्तु) शान्तिदायक हों।

ओं शन्नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥ [ऋ० ७।३५।८॥]

अर्थ—(उरुचक्षा) अनेक पदार्थों के दर्शन कराने वाला (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिए (शम्) सुखदायक (उदेतु) उदय होवे (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाएं (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हो (ध्रुवयः) दृढ़ (पर्वताः) पर्वत (नः शम्) हमें सुखदायक हों (सिन्धवः) नदियाँ वा समुद्र (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हो (उ) और (आपः) जल-(शं-सन्तु) सुखदायक हों।

ओं शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषानो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥ [ऋ० ७।३५।९॥]

अर्थ—(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी माताएँ नः शम्) हमें सुखदायक हों (स्वर्काः) शोभन विचार वाले (मरुतः) शूरवीर लोग (नः शम् भवन्तु) हमारे लिए सुखदायक हों (विष्णुः) सूर्य (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हों (उ) और

(पूषा) पुष्टिदायक तत्त्व (शम्) सुखदायक हों (भवित्रम्) भवितव्य (नः शम्) हमें सुखदायक हों (उ) और (वायुः) पवन (शम्-अस्तु) सुखदायक हों ।

ओं शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः । शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शभुः ॥१०॥ [ऋ० ७।३५।१०॥]

अर्थ—(त्रायमाणः) रक्षा करते हुए (सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हो (विभातीः) चमकती हुई (ऊषसः) प्रभात बेलाएं (नः शम् भवन्तु) हमें सुखदायक हों (परजन्यः) मेघ (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाओं के लिए (शम्) सुखदायक हो (शंभुः) मंगलदाता (क्षेत्रस्य पतिः) खेतों का स्वामी (कृषक (नः शम् अस्तु) हमें सुखदायक हों ।

ओं शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु । शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥११॥ [ऋ० ७।३५।११॥]

अर्थ—(देवाः) दिव्यगुणधारी (विश्वेदेवाः) सब देव जन (नः शम् भवन्तु) हमारे लिए सुखदायक हों (धीभिः सह) उत्तम बुद्धियों के साथ (सरस्वती) वेद विद्या (शं-अस्तु) कल्याण देने वाली हो (अभिषाचः) आत्मदर्शी योगी (नः शम्) हमारे लिए सुखदायक हों (उ) और (रातिषाचः) दान का सेवन करने वाले (शम्) शान्तिदायक हों (दिव्याः) आकाशीय पदार्थ (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः शम्) हमें सुखदायक हों (अप्याः) जलीय पदार्थ (नः शम्) हमारे लिय कल्याणकारक हों ।

ओं शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥ [ऋ० ७।३५।१२॥]

अर्थ—(सत्यस्य) सत्य के (पतयः) पालनकर्त्ता पुरुष (नः शम्) हमें सुखदायक हों (उ) और (गावः) गाएँ (शम् सन्तु) सुखदायक) हो (सुहस्ताः) अच्छे हाथ वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् (सुकृतः) सत्कर्मी लोग (नः शम्) हमें सुखदायक हों (हवेषु) युद्धों में (पितरः) रक्षक सैनिक लोग (नः शम् भवन्तु) हमारे लिए सुखदायक हों।

ओं शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं वोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शं नो अपांनपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपः ॥१३॥ [ऋ० ७।३५।१३॥]

अर्थ—(नः) हमारे लिए (अजः) अजन्मा (एक पाद्) एक मात्र रक्षक (देवः) सुखदाता परमेश्वर (शम् अस्तु) सुखदाता हो (बुध्न्यः) अन्तरिक्षस्थ (अहिः) मेघ (नः शम्) हमें सुखदाता हो (समुद्रः) समुद्र (नः शम्) हमें सुख दें (अपाम्) जलों की (नपात्) नौका (नः) हमें (शम् पेरुः) सुखपूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो (देवगोपाः) देव जिसके रक्षक हैं ऐसा, (पृश्नि) अन्तरिक्ष (नः शम्-भवतु) हमें सुखदायक हो।

ओं इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥ [यजु० ३६।८॥]

अर्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (विश्वस्य) जगत का (राजति) (राजति) राजा है (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्य पक्षी आदि दो पैर वालों के लिए (शं) सुखदायक हों (चतुष्पदे) चौपायों के लिए (शं) सुखदायक हों।

ओं शं नो वातः पवता ँ्शं नस्तपतु सूर्य्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥१५॥ [यजु० ३६।१०॥]

अर्थ—(वातः) पवन (नः) हमारे लिए (शं) सुखकारी पवतां चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें (शं) सुखकारक (तपतु) तपे (कनिक्रदद्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (पर्जन्यः देवः) बादल (नः शं) हमारे लिए सुख की (अभिवर्षतु) वर्षा करे।

ओं अहानि शं भवन्तु नः शँ्रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥ [यजु० ३६।११॥]

अर्थ—(नः) हमें (अहानि) दिन (शं भवन्तु) सुखकारी हों (रात्रीः) रातों में (शं) सुख (प्रतिधीयतां) धारण किया जावे (इन्द्राग्नि) बिजली और अग्नि (अवोभिः) रक्षा साधनों से (शं भवताम्) सुखदायक हों (रातहव्याः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के देने वाले (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः शम्) हमें सुख दें। (वाजसातौ) अन्नों के लाभ में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और भूमि (नः शम्) हमें सुख देने वाली हों। (सुविताय) सुन्दर जीवन के लिए (इन्द्रा सोमा) विद्युत् और औषधियाँ (शम्) रोगों के नाशक और (योः) भयों के निवर्त्तक हों।

ओं शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिवस्रन्तुनः ॥१७॥ [यजु० ३६।१२॥]

अर्थ—१—(अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिए (पीतये) पान के लिए (देवीः) दिव्य गुणों वाले (आपः) जल (नः) हमको

(शं) सुखकारी (भवन्तु) होवें। (शं) रोग नाशक और (योः) भयनिवारक होकर (नः अभि) हमारी ओर (स्रवन्तु) बहें।

२– (देवी आपः) सब का प्रकाशक सब को आनन्द देने वाला सर्वव्यापक ईश्वर (अभिष्टये) मनोवांछित फल के लिए और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए (नः) हम को (शं) कल्याणकारी (भवन्तु) हों अर्थात् हमारा कल्याण हो तथा वही परमेश्वर (नः) हम पर (शं योः) सुख को (अभिस्रवन्तु) सर्वतः वृष्टि करें।

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्ति विश्वे देवाः शान्ति ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥१८॥ [यजु० ३६।१७॥]

अर्थ—(द्यौः) द्युलोक (अन्तरिक्षं) मध्यलोक (पृथिवी) भू लोक (आपः) जल (औषधयः) औषधियाँ (वनस्पतयः) वनस्पतियाँ =वृक्ष (विश्वे-देवाः) सब देव लोग (ब्रह्म) ईश्वर या वेद विद्या और (सर्वम्) अन्य सब वस्तुएं (शान्तिः) शान्तिदायक हों। [शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है]। (शान्तिः एवं शान्तिः) स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो (सा) वह (शान्तिः) शान्ति (मा, मुझको (एधि) प्राप्त होवे।

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥ [यजु० ३६।२४॥]

अर्थ—(तत्) वह (चक्षुः) सब का दर्शक (देवहितं) देवों का

(शुक्र) तेजस्वी (पुरस्तात्) पूर्व से (उत्चरत्) उदय होता है। सर्वोपरि विचरता है। हम उसकी कृपा से (शतं) सौ (शरदः) वर्ष पर्यन्त (पश्येम) देखते रहें (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (जीवेम) जीते रहें (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (शृणुयाम) सुनते रहें। (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) बोलते रहें, वाक् शक्ति से युक्त रहें (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (अदीनाः-स्याम) स्वाधीन रहें (च) और (शतात् शरदः) सौ वर्ष से भूयः) अधिक आयु तक भी हमारे शरीर में ये सब शक्तियां बनी रहें और हम अपने ही सामर्थ्य से सब काम करने योग्य बने रहें, परमुखापेक्षी न बनें।

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति दूरंगमम् ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२०॥ [यजु० ३४।१।

अर्थ—(यत्) जो (दैवं) दिव्य गुणों से युक्त (जाग्रतः) जागते हुए का (दूरं) दूर (उत्एति) अधिक जाता है (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) जाता है। (दूरंगमं) दूर तक जाने वाला (ज्योतिषां) विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का (एक ज्योतिः) एक प्रकाशक है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्प) अच्छे संकल्प वाला (अस्तु) होवे।

ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः यदपूर्वंयक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२१। [यजु० ३४।२॥

अर्थ—(येन) जिनके द्वारा (अपसः) सत् कर्मनिष्ठ (मनी-षिणः) मन पर शासन करने वाले (धीराः) जितेन्द्रिय बुद्धिमान्

लोग (यज्ञं) यज्ञादि परोपकार के कार्यों में (विदथेषु) ज्ञान प्रचार के कार्यों में या ग्राम आदि में (कर्माणि) कर्मों को (कृन्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (प्रजानां अन्तः) प्राणिमात्र के भीतर (अपूर्वं) अद्भुत (यक्षं, शक्ति है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पं अस्तु) कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

ओं यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु ॥२२॥ [यजु० ३४।३।]

अर्थ—(यत्) जो (प्रज्ञानं) विशेष ज्ञान का साधन (उत) और (चेतः च) और स्मृति शक्ति का (धृतिः) धारण करने वाला है (यत्) जो (प्रजासु अन्तः) मनुष्यों के भीतर (अमृतं) अमर=न बुझने वाला (ज्योतिः) प्रकाश-साधन है (यस्मान्न-ऋते) जिसके बिना (किंचन) कोई भी (कम) काम (न क्रियते) नहीं किया जाता (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ॥२३॥ [यजु० ३४।४।]

अर्थ—(अमृतेन) न मरे हुए (येन) जिस मन के द्वारा (भूतं) पिछला (भुवनं) वर्तमान और (भविष्यत्) आगामी (इदं सर्वं) यह सब ज्ञान (परिगृहीतं) ग्रहण किया जा सकता है। (येन) जिस के द्वारा (सप्त होता) दो कान, दो आँख, १ नाक, १ जीभ और एक त्वचा इत्यादि से सम्पादित किया जाने वाला (यज्ञः) ज्ञान यज्ञ (तायते) विस्तृत किया जाता है। (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

ओं यस्मिन्नृचः सामयजू ँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२४॥ [यजु० ३४।५॥]

अर्थ—(यस्मिन्) जिसमें (रथनाभौ) रथ की नाभि में (अराः इव) आरों की तरह (ऋचः) ऋग्वेद (सामः) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (यस्मिन्) और जिस में अथर्ववेद (प्रतिष्ठिताः) ये सब जुड़े हुए हैं। (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानां) प्राणियों का (सर्वं) सम्पूर्ण (चित्तं) ज्ञान (ओतं) ओतप्रोत है (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

ओं सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥ [यजु० ३४।६॥]

अर्थ—(सुषारथिः) अच्छा सारथी (इव) जिस प्रकार (अभीशुभिः) लगामों से (वाजिनः) वेग वाले (अश्वान्) घोड़ों को (नेनीयते) बलात् ले जाता है उसी प्रकार (यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों का इधर उधर विचार क्षेत्र में ले जाता है (हृत्प्रतिष्ठं) जो हृदय में स्थित (अजिरं) और कभी बूढ़ा न होने वाला और (जविष्ठं) अत्यन्त वेगवान् है (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

ओं स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते। शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥ [साम० उत्त० १।३॥]

अर्थ– (राजन्) हे संसार के राजा (सः) वह आप (नः) हमारे (गवे) गौ आदि के लिए (शं पवस्व) सुख की पवन बहायें

(जनाय शं) मनुष्य समूह के लिए भी (अर्वते शं) घोड़े आदि उपयोगी पशुओं के लिए भी (ओषधीभ्यः शं) ओषधियों के लिए भी सुख की पवन बहावें।

ओं अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥ [अथर्व० १९।१५।५॥

अर्थ—(नः) हमें (अन्तरिक्षं) मध्यवर्ती अन्तरिक्ष लोक (अभयं) निर्भयता (करति) प्रदान करे (उभे इमे) दोनों ये (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोक (अभयं) निर्भयता प्रदान करें। (पश्चात्) पश्चिम में या पीछे से (अभयं) अभय हो (पुरस्तात्) पूर्व में या आगे से (अभयं) अभय हो (उत्तरात्(उत्तर में या ऊपर से (अभयं) अभय हो और (अधरात्) दक्षिण में वा नीचे से (अभयं अस्तु) हम अभय हों।

ओं अभयं मित्रादभयममित्रादभयंज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥
[अथर्व० १९।१५।६॥]

अर्थ—(मित्रात्) मित्र से (अभयं) अभय हो। (अमित्रात्) शत्रु से (अभयं) निर्भयता हो (ज्ञातात् परोक्षात्) जाने पहचाने से (अभयं) अभय हो, (सर्वाः) सब (आशाः) आशा या दिशायें (मम) मेरी (मित्रं) मित्र (भवन्तु) हों।

॥ इति शान्ति प्रकरणम् ॥

———

हवन (देवयज्ञ)

अथ सामान्य-प्रकरणम्

(आचमनविधिः)

यज्ञ करने के लिए बैठे हुए सब लोग अपने जल पात्र से दायें हाथ की हथेली पर थोड़ा जल ले कर नीचे लिखे मन्त्रों से तीन आचमन करें।

ओं अमतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ इससे एक।

अर्थ—(अमृत) हे अमृत ! तू (उपस्तरणम्) नीचे का बिछौना (असि) है (स्वाहा) हमारा यह कथन सत्य और शोभा युक्त है।

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ इससे दूसरा।

अर्थ—(अमृत) हे अमृत ! तू (अपिधानं) ऊपर का ओढ़ना (असि) है (स्वाहा) हमारा यह कथन सत्य और शोभा युक्त है।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥ इस से तीसरा आचमन करें। [मानवगृह्यसूत्र १।९।१५—१७॥]

अर्थ—(मयि) मुझ में (सत्यं) सत्य (यशः) यश (श्रीः) लक्ष्मी (श्रीः) आश्रयरूप (श्रयताम्) स्थित हो। (स्वाहा) हमारा यह कथन सत्य और शोभा युक्त है।

(अङ्गस्पर्शमन्त्राः)

ऊपर लिखे तीन मन्त्रों से आचमन करके तत्पश्चाद् बायें हाथ की हथेली पर जल लेकर दायें हाथ की बीच की दो अंगुलियों से नीचे लिखे छः मन्त्रों से अङ्ग स्पर्श और सातवें से मार्जन करें।

ओं वाङ् म आस्येऽस्तु ॥१॥ इससे मुख स्पर्श करें।

अर्थ—(मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वाक् शक्ति (अस्तु) अच्छी दशा में रहे ॥

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥२॥ इससे नासिका।

अर्थ—(मे) मेरे (नसोः) नासिका-छिद्रों में (प्राणः) प्राण-शक्ति (अस्तु) अच्छी दशा में रहे ॥

ओं अक्षणोर्मे चक्षुरस्तु ॥३॥ इससे दोनों आँखें।

अर्थ—(मे) मेरे (अक्षणोः) दोनों आँखों में (चक्षुः) देखने की शक्ति (अस्तु) अच्छी दशा में रहे ॥

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥४॥ इससे दोनों कान।

अर्थ— (मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणशक्ति (अस्तु) अच्छी दशा में रहे ॥

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥५॥ इस से दोनों बाहें।

अर्थ—(मे) मेरी (बाह्वोः) भुजाओं में (बलं) बल (अस्तु) अच्छी दशा में रहे ॥

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ॥६॥ इस से दोनों जांघें।

अर्थ—(मे) मेरे ऊर्वोः) जंघाओं में (ओजः) सामर्थ्य (अस्तु) अच्छी दशा में रहे ॥

ओं अरिष्टानिमेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।।७

पास्कर गृ० का० १ । कण्डिका ३ । सू० २५ ।

इस से सारे शरीर पर जल छिड़के ।

अर्थ—(मे) मेरा (तनुः) शरीर और (मे) मेरे (तन्वाः) शरीर के (अंगानि) सब अवयव (सह) साथ ही (अरिष्टानि) रोग रहित (सन्तु) स्वस्थ अवस्था में रहें ।।

तत्पश्चात् वेदी में समिधाचयन करें ।

[अग्न्याधान मन्त्रः]

ओं भूर्भुवः स्वः ।। गोभिल गृह्यसूत्र १।१।११।।

इस मन्त्र से उच्चारण करके कड़छी में रखे कपूर में अग्नि प्रज्वलित करे ।

अर्थ—वह परमात्मा (भूः) प्राण स्वरूप (भूवः) दुःखों को दू करने वाला और (स्वः) सुख स्वरूप है ।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्ण तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।। यजु० ३।५।। इस मन्त्र को बोलकर वेदी के बीच में अग्नि रख दें ।

अर्थ—वह परमात्मा (भूः भुवः स्वः) पृथिवी अन्तरिक्ष औ स्वर्ग तीनों लोकों में विद्यमान है । वह प्रभु (भूम्ना) अपनी चम से (द्यौः इव) आकाश की तरह और (वरिम्णा) महिमा से पृथ समान है । (देवयजनि पृथिवी) जिस पर देव लोग नित्य यज्ञ कर हैं ऐसी पृथिवी (तस्याः) उस (ते) तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (अन्नाद्या भक्षण योग्य अन्न की प्राप्ति के लिए (अन्नादं) अन्नों के भक्ष करने वाले (अग्निं) अग्नि को (आदधे) स्थापित करता हूँ ।।

[अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्र]

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥२॥ [यजु० १५।५४॥]

इस मन्त्र से अग्नि पर छोटी २ लकड़ियाँ रख कर अग्नि को प्रदीप्त करें ।

अर्थ—हे (अग्ने-उद्बुध्यस्व) उठो—(प्रति जागृहि) जागो, (त्वम्) तुम (च) और (अयम्) यह यजमान (इष्टापूर्ते) इष्ट-यज्ञादि और पूर्त-कुआँ, बावड़ी, धर्मशालादि बनवाना (संसृजेथाम्) मिल कर सम्पादन करो। (अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) उत्तम (सधस्थे) इकट्ठा बैठने के स्थान (अधि) पर (विश्वे) सारे (देवाः) विद्वान् लोग (च) और (यजमानः-सीदत) यजमान आप बैठें ।

[समिदाधान के मन्त्र]

अग्नि जब समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की या पलाश की आठ २ अंगुल की तीन समिधाएं घी में डुबो कर अग्निकुण्ड में निम्न मन्त्रों से डालें ।

ओम् अयन्त इध्म आत्माजातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा । इदमग्नये जातवेवसे । इदं न मम ॥१॥

[आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१०।१२।]

इस मन्त्र से एक समिधा डालें ।

अर्थ—हे (जातवेदः) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान अग्ने ! (अयं) यह (इध्मः) इधन (ते) तेरी (आत्मा) जान है (तेन) इसके

द्वारा (इध्यस्व) प्रदीप्त हो। च=और (वर्धस्व) बढ़। (इह) निश्चय करके (अस्मान्) हमको (वर्धय) बढ़ा। और (प्रजया) बाल बच्चों से (पशुभिः) पशुओं (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्म तेज से और (अन्नाद्येन) खाने योग्य अन्नादि पदार्थों से (सम् एधय) समृद्ध कर (स्वाहा) हमारा यह कथन सत्य और शोभायुक्त है (इदं) यह हवि (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि के लिए है। (इदं) यह (न मम) मेरे लिए नहीं है।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन् हव्या जुहोतन ॥२॥

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्ने जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये। जातवेदसे इदन्न मम ॥३॥

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी डालें।

अर्थ—(समिधा) ईंधन से और (घृतैः) घी से (अग्निं) अग्नि को (बोधयत) चेताओ और (अतिथिम्) अतिथि की तरह उसकी (दुवस्यत) पूजा करो। (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) हवन सामग्री की (आजुहोतन) आहुतियाँ दो। (इदमग्नये इदन्न मम) यह अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं ॥२॥

अर्थ—(सुसमिद्धाय) अच्छी तरह प्रदीप्त (शोचिषे) कान्तिमान (जातवेदसे) सब पदार्थों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि के लिए (तीव्रं) तपाया हुआ (घृतं) घी की (जुहोतन) आहुति दो। (इदमग्नये इदन्न मम) यह अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा इदमग्नयेऽङ्गिरसे। इदन्न मम ॥४॥

इससे तीसरी समिधा डालें।

अर्थ—(अंगिर) सर्वत्र प्राप्त होने वाले। (यविष्ठ्य) पदार्थों का संश्लेषण और विश्लेषण करने वाले (तम्) इस प्रकार के (त्वा) तुझ को (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घी से (वर्धयामसि) हम बढ़ाते हैं। (बृहत्) बहुत (शोच) प्रकाशित होओ। (इदमग्नये अग्नि से इदन्न मम) पहले की तरह।

(घृताहुति मन्त्र)

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे। इदन्न मम ॥१॥

(इसका अर्थ पहले कर चुके हैं)

इस मन्त्र से घी की ५ आहुतियाँ देवें। तत्पश्चात् अंजलि में जल लेके, वेदी के पूर्व दिशा आदि चारों ओर निम्न ४ मन्त्रों से छिड़कावें।

[जल प्रसेचन के मन्त्र]

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥१॥ इससे पूर्व दिशा में।

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥२॥ इससे पश्चिम दिशा में।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥३॥ इससे उत्तर दिशा में।

[गोभिल गृ० प्र० १। खं० ३। सूत्र १,२, ३]

अर्थ—हे (अदिते) अखण्डनीय परमात्मन्! (अनुमन्यस्व) आप हमें अनुकूल मति प्रदान करें॥

हे (अनुमते) अनुकूल मति के दाता प्रभो ! (अनुमन्यस्व) आप हमें अनुकूल मति दीजिए ॥

हे (सरस्वती) ज्ञानस्वरूप प्रभो ! (अनुमन्यस्व) आप हमें अनुकूल मति दीजिए ॥

इस प्रकार तीन ओर जल छिड़क कर, अगले मन्त्र से चारों ओर जल छिड़कें ॥

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातुवाचस्पतिर्वाचं स्वदतु ॥४॥

[यजु० अ० ३० मं० १]

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावें ।

अर्थ—(देव) प्रकाश स्वरूप (सवितः) सबके उत्पादक भगवन् आप (यज्ञं) यज्ञ को (प्रसुव) भलि भाँति आगे बढ़ाइए (यज्ञपतिं) यज्ञ करने वाले यजमान को (भगाय) ऐश्वर्य के लिए आगे बढ़ाइये (दिव्यः) तेजस्वी (गन्धर्वः) वेदवाणी का धारक (केतपूः) बुद्धि को पवित्र करने वाला ईश्वर (नः) हमारी (केतं) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे । (वाचस्पतिः) वाणी का रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठा बनावे ॥

[आघाराज्याहुतिमन्त्र]

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के उत्तर भाग में पहली तथा दक्षिण भाग में दूसरी घी की आहुति दें ।

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥

अर्थ—(अग्नये) अग्नि स्वरूप परमात्मा के लिए (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति समर्पण है । (इदमग्नये इदन्न मम) यह समर्पण अग्नि के लिए है मेरे लिए नहीं ।

ओं सोमाय स्वाहा ।।इदं सोमाय । इदन्न मम ।। ।।२।।

(गोभिल गृ० म० १ । खं० ८ । सू० ३४।।)

अर्थ—(सोमाय) सोम रूप परमात्मा के लिए (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति (समर्पण) है ।

(इदं सोमाय इदन्न मम) यह समर्पण सोम के लिए है मेरे लिए नहीं ।।

[आज्यभागाहुतिमन्त्र]

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति दें ।

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये । इदं न मम ।१।

(यजु० १८।२८।।)

अर्थ—(प्रजापतये) प्रजापालक ईश्वर के लिए (स्वाहा) यह सुन्दर आहुति है ।। शेष पूर्ववत् ।।

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदं इन्द्राय । इदं न मम ।।२।।

(यजु० २२।२७।।)

अर्थ—(इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के अधिष्ठाता ईश्वर के लिए (स्वाहा) सुन्दर आहुति है ।

[प्रातःकाल आहुति के मन्त्र]

इन आगे के मन्त्रों से घी को तथा हवन-सामग्री की आहुति दें ।

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।।१।।

ओं सूर्योवर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।२।।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।।३।।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ।।४।।

अर्थ—(१) (सूर्यः) सर्व प्रेरक परमात्मा (ज्योतिः) प्रकाशमान है जैसे कि (ज्योतिः) यह प्रकाश का मण्डल (सूर्यः) यह सूर्य लोक है।

(२)—(सूर्यः) सब का उत्पादक ईश्वर (वर्चः) कान्तिमय है। यह (ज्योतिः) सब ज्योति जो संसार में दिखाई देती है वह (वर्चः) उसी की कान्ति है।

(३)—(ज्योतिः) सब के नेत्र की ज्योति (सूर्यः) वह प्रकाशमान ईश्वर है जैसे (सूर्यः) यह सूर्य लोक (ज्योतिः) हमारी आँख की ज्योति है।

(४)—(देवेन) प्रकाशमान (सविता) सृष्टि के उत्पादक परमेश्वर के (सजूः) साथ और (इन्द्रवत्या) सूर्य के साथ रहने वाली (उषसा) प्रभात वेला के (सजूः) साथ (जुषाणः) प्रीति करता हुआ (सूर्यः) सूर्य—(वेतु) जगत् को प्रकाशित करे। (स्वाहा) यह कथन सत्य और शोभा युक्त है॥

[सायंकाल यज्ञाहुति के मन्त्र]

सायंकाल यज्ञ न करना हो तो सुबह ही इन मन्त्रों से आहुति दे देवें।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥१॥

ओं अग्निर्वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥३॥

तीसरे मन्त्र का मन से उच्चारण करके—आहुति देवें।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्याजुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥४॥

अर्थ—(१) (अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप है। जैसे (ज्योतिः) प्रकाशमान (अग्निः) आग है ॥

(२) (अग्निः) परमेश्वर (वर्चः) कान्तिदायक है। यह (वर्चः) कान्ति, सब (ज्योतिः) उस ज्योतिमय परमेश्वर की है।

(३) (अग्निः) परमेश्वर (ज्योतिः) संसार के नेत्र की ज्योति जैसे (अग्निः) आग का प्रकाश (ज्योतिः) हमारे नेत्र की ज्योति है।

(४) (देवेन) प्रकाशमय (सवित्रा) सृष्टि के उत्पादक प्रभु के (सजूः) साथ और (इन्द्रवत्या) सूर्य के साथ रहने वाली (रात्र्या) रात्री के (सजू) साथ (जुषाणः) प्रीति करती हुई (अग्निः) आग (वेतु) जगत् को प्रकाशित करे। (स्वाहा) ॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय। इदन्न मम ॥१॥

ओं भुववर्यिवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय स्वाहा। इदन्न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ इदमादित्याय व्यानाय इदन्न मम ॥३॥

अर्थ—(१) (भूः) प्राणप्रिय प्रभु और (अग्नये) अग्नि के लिए और (प्राणाय) प्राण वायु की अनुकूलता के लिए [शेष पूर्ववत्]

(२) (भुवः) दुःखनाशक प्रभु के लिए और (वायो) जीवनप्रद (अपानाय) अपान वायु की अनुकूलता के लिए [शेष पूर्ववत्]

(३) (स्वः) सुख स्वरूप प्रभु के लिए और (आदित्याय) सूर्य के लिए (व्यानाय) व्यान वायु की अनुकूलता के लिए। [शेष पूर्ववत्]।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहः। इदमग्नि वाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

अर्थ—(भूः, भुवः, स्वः) प्राणरूप दुःखविनाशक और सुख स्वरूप प्रभु की प्रसन्नता के लिए और (अग्नि, वायु, आदितेभ्यः) अग्निवायु और सूर्य की अनुकूलता के लिए और (प्राण-अपान-व्यानेभ्यः) प्राण-अपान-व्यान वायु की अनुकूलता के लिए (स्वाहा) यह श्रेष्ठ आहुति है। (इदम्) यह (अग्नि वायु-आदितेभ्यः) अग्नि-वायु और सूर्य की अनुकूलता के लिए, और (प्राण-अपान-व्यानेभ्यः) प्राण-अपान व्यान की स्वस्थतार्थ है (इदम् न मम) यह मेरे लिए नहीं है।

ओम् आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभू-र्भुवः स्वरों स्वाहा ॥५॥

अर्थ—(ओ३म्) सर्व रक्षक परमेश्वर (आपः) सर्वव्यापी (ज्योतिः) प्रकाशरूप (रसः) आनन्द रसदाता (अमृतम्) अमर (ब्रह्म) सब से महान्) (भूः) सर्वाधार (भुवः) सर्वव्यापक और (स्वः) सुखस्वरूप है जो परमात्मा है उसके लिए यह आहुति है।

ओं या मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तयामामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥६॥

अर्थ—(याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि को (देवगणाः) विद्वान् जन (च) और (पितरः) रक्षक लोग (उपासते) आश्रय लेते हैं। (तया) उस (मेधया) बुद्धि से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! (माम्) मुझको (अद्य) आज (मेधाविनम्) बुद्धिमान् (कुरु) तू बना (स्वाहा) यह कथन सत्य और शोभायुक्त है।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव ॥७॥

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम स्वाहा ॥८॥

इन दोनों मन्त्रों का अर्थ प्रार्थना मन्त्रों में आ चुका है।

अन्त में निम्न लिखित मन्त्र से तीन बार पूर्णाहुति दें।

ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥१॥

॥ पूर्णाहुति प्रकरणम् ॥

[आघाराज्याहुतिमन्त्र]

ओं अग्नये स्वाहा। इदमग्नये। इदं न मम ॥१॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में।

ओं सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय। इदं न मम ॥२॥

इस मन्त्र से दक्षिण भाग में अग्नि में घृत की आहुति दें।

[आज्यभागाहुतिमन्त्र]

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये। इदन्न मम ॥१॥

ओं इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय। इदं न मम ॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के बीच में आहुति दें।

[व्याहृति आहुतिमन्त्र]

इन मन्त्रों से घृत की चार आहुतियां देवें।

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये। इदन्न मम ॥१॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे। इदन्न मम ॥२॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदं स्वरादित्याय। इदन्न मम ॥३॥

ओं भुर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्नि-वाय्वादित्येभ्यः। इदन्न मम ॥४॥ [गो० १।८।४॥]

अर्थ—१. (भूः) सर्वाधार (अग्नये) अग्नि रूप ईश्वर के लिए।

२. (भुवः) दुःखनाशक (वायवे) वायु समान व्यापक ईश्वर के लिए।

३. (स्वः) सुखस्वरूप (आदित्याय) आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए।

४. पूर्वोक्त सर्व गुणयुक्त ईश्वर के लिए यह आहुति है॥

[स्विष्टकृत आहुति मन्त्र]

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा। इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम। [शतपथ का० १४।९।४।२४॥पा० १।२।१०॥]

अर्थ— (यत्) जो (अस्य) इस (कमर्णः) कर्म के सम्बन्ध में (अति-अरीरिचम्) विधि से अधिक किया गया हो (वा) या (इह) इस कर्म में (न्यूनम्) न्यून (अकरम्) किया हो (स्विष्टंकृत्) शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाला (अन्तिम्) प्रभु (सर्व-सु-इष्टेविद्यात्) मेरे सब मनोरथों को जानता है। (तत् मे सुहुतं-करोतु मे) वह प्रभु मेरे लिए इस कर्म को सफल करे (स्विष्ट-कृते) शोभन यज्ञ सम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले (सर्व) सब (प्रायश्चित-आहुतीनाम्) सर्व पाप की प्रतिकार रूपी आहुतियों का (कामानाम्) सब कामनाओं के (समर्द्धमित्रे) पूर्ण-कर्त्ता (अग्नये) अग्नि रूप परमात्मा के लिए यह आहुति दे रहा हूँ। हे अग्ने (नः) हमारी (सर्वान्) सारी (कामान्) कामनाओं को (समर्धय) पूर्ण कीजिये। यह आहुति प्रभु की सेवा में अर्पित है। (इदम्) यह आहुति (न) नहीं है (मम) मेरे लिए॥

[प्राजापत्याहुतिमन्त्र]

ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये। इदन्न मम।

अ० १।३।८॥

इस मन्त्र को मन्त्र में बोल कर आहुति दें।

[प्रधान होम संबन्धी चार आज्याहुति]

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवसआ सुवोर्ज्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा। इदं अग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥ [ऋ० मं० ९। सू० ६६। मंत्र १९]

अर्थ—(भूः भुवः स्वः) हे सर्वाधार, दुखनाशक सुखस्वरूप (अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप प्रभु! तू (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों

की (पवसे) रक्षा करता है। (नः) हम को (ऊर्ज) बल (च) और (इष्टं) अन्न (आसुव) प्रदान कर। (दुच्छुनां) रोग जन्तु आदि राक्षसों को (आरे) दूर (बाधस्व) रोको। यह हवि (पवमानाय) पवित्र करने वाले अग्नि स्वरूप प्रभु के लिए है मेरे लिए नहीं है।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय। इदन्न मम ॥२॥ [ऋ० मं० ९. सू० ६६. मंत्र२०]

अर्थ—(अग्निः) प्रकाश स्वरूप प्रभु (ऋषिः) सर्वद्रष्टा (पवमानः) सर्व रक्षक तथा शोधक (पांचजन्य) चारों वर्ण के लोगों तथा अन्य सब लोगों का समान रूप से हितकारक और (पुरोहितः) सब का अगुआ है। (तं) उस (महागयं) बहुत प्रशंसा के योग्य प्रभु को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं॥

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा-अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय। इदन्न मम ॥३॥ [ऋ० मं० ९। सू० ६६, मं० २१]

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभु आप (सुअपाः) अच्छे कर्मों के अधिष्ठाता हैं, आप (अस्मे) हमें (वर्चः) बल और (सुवीर्यः) पराक्रम (पवस्व) प्राप्त कराओ। (मयि) मुझ में (रयिम्) (धनादि) को और (पोषम्) शरीर की पुष्टि को (दधत्) धारण कराओ॥

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा-जातानि परिता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥४॥ [ऋ० मं० १०, सू० १२१, मंत्र १० ॥आ० १।४।४॥

अर्थ—इस मन्त्र का अर्थ ईश्वर-स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्र ६ में दिया जा चुका है।

[अष्ट आज्याहुतिमन्त्र]

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो बह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नि वरुणाभ्यां। इदन्न मम ॥१॥

[ऋ० मण्ड० ४, सू० १, मंत्र।४।]

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप प्रभु! (त्वं) तू (विद्वान्) सब कुछ जानने वाला है। इसलिए (नः) हम को (देवस्य वरुणस्य) वरुणदेव प्रभु के (हलः) अनादर से (अवयासिसीष्ठाः) पृथक् रख तू (यजिष्ठः) यजनीयों में सर्वोत्तम (वह्नितमः) सुगन्ध आदि के वहन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ और (शोशुचानः) दीप्ति वालों में भी सब से बढ़ कर हैं अतः आप (अस्मत्) हमारे अन्दर से (बिश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष भावों को (प्रमुमुग्धि) दूर कर दीजिए॥

ओं सत्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्ठौ। अव यक्ष्वनो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं-सुहवो न एधि स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्यां इदन्न मम ॥२॥

अर्थ—(सः) वह (त्वं) तू (अग्ने) हे अग्नि! (नः) हमारा (ऊती) रक्षा निमित्त (अवसः) रक्षक और (अस्याः) इस (उषसः) उषाकाल के (व्युष्ठौ) कर्म में (नेदिष्ठः) अति समीपवर्ती (भव) हो। (रराणः) सुमति का दान करते हुए (नः) हमको (वरुणं) वरणीय श्रेष्ठ विद्वानों से (अवयक्ष्व) संगत कराओ (मृडीकं)

सुखदायक आहुति को (वीहि) स्वीकार करो और (नः) हमें (सुहवाः) भली प्रकार सुनने वाला (एधि) हो ॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामस्युरा चके स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम ॥३॥

[ऋ० मण्ड० १ । सू० २५ । मंत्र १९ ॥

अर्थ—(वरुण) हे वरणीय प्रभो ! (अद्य) आज (मे) मेरी (इमं) इस (हवं) पुकार को (श्रुधी) सुनिये और मुझे (मृडय) सुखी कीजिए । (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ (त्वं) तुझको (आचके) पुकारता हूँ ॥

ओं तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम ॥४॥

[ऋ० मण्ड० १। सू० २४। मंत्र ११।]

अर्थ—(वरुण) हे वरणीय प्रभो ! (ब्रह्मणा) वेद मन्त्रों से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत) उस ही आयु को (हविर्भिः) हवियों द्वारा (यजमानः) यज्ञ करने वाला (आशास्ते) चाहता है (इह) इस यज्ञशाला में (अहेडमानः) हमारी प्रार्थना का अवहेलना न करते हुए (बोधि) उसे जानो । हे (उरुशंसः) सब से प्रशंसित (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा) मत (प्रमोषीः) नष्ट कर ॥

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदं न मम ॥५॥

[का० श्रौ० सू० सु १, ११।]

अर्थ—हे (वरुण) वरणीय प्रभो ! (ये) जो (ते) तेरी सृष्टि में (शतं) सैकड़ों (ये सहस्रं) और जो हजारों (यज्ञियाः) यज्ञ सम्बन्धी (वितताः) विस्तृत (महान्तः) बड़े २ (पाशाः) जाल हैं। (तेभिः) उन से (अद्य) आज (सविता) सर्वोत्पादक (उत) और (विष्णुः) सर्वव्यापक आप और (विश्वे) सब (स्वर्काः) अच्छी स्तुति वाले (मरुतः) विद्वान् लोग (मुंचन्तु) छुड़ावें ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तियाश्च सत्यमित्त्वमयासि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजं स्वाहा। इदमग्नये अयसे इदं न मम ॥६॥ [कात्या० १५—११॥]

अर्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (त्वं) तू (अयाः) सर्वत्रव्यापक (असि) है (च) और (अनभिशास्तिपाः) निर्दोष प्राणियों के रक्षक (असि) हो (च) और (त्वं) अयाः) कल्याणकारक हो यह बात (सत्यं इत्) सच्ची ही है। (अयाः) सर्वव्यापक आप (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (वहासि) लक्ष्य तक पहुँचाइये (अयाः) सर्वत्र पहुँच कर (नः) हमें (भेषजं) रोग निवारक शक्ति को (धेहि) देओ ॥

(इदमग्नये अयसे इदन्न मम) यह सर्वव्यापक प्रभु के लिए समर्पण है मेरे लिए नहीं ॥

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय। अथावयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणायाऽऽदित्या यादितये च इदन्न मम ॥७॥

[ऋ०मण्ड०१।सू०२४।मन्त्र १५॥]

अर्थ—हे (वरुण) वरणीय प्रभो ! (अस्मत्) हम में से (उत्तमं) उत्तम (पाशं) पाश को (उत्श्रथाय) ऊपर से शिथिल कर दें। (अधमं) निकृष्ट पाप को (अवश्रथाय) नीचे से शिथिल कर दें।

(अथ) और हे (आदित्य) बंधन रहित प्रभो ! (वयं) हम (तव) तेरे (व्रते) नियम में स्थिर) रहते हुए (अनागसः) पाप से रहित होकर (अदितये) बंधन से रहित दशा के लिए (स्याम) होवें ।।

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसा वरेपसौ मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जातवेदोभ्यां इदन्न मम ।।८।।

[यजु० अ० ५। मन्त्र ३।। पा० १।२।८।।]

अर्थ—हे (जातवेदसौ) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान भौतिक अग्नि तथा परमेश्वर आप दोनों (नः) हमारे लिए (समनसौ) अनुकूल मन वाले (सचेतसौ) समान ज्ञान वाले (अरेपसौ) पाप रहित (भवतम) होवो । (यज्ञं) यज्ञ का (माहिंसिष्टं) हनन न करें (मा यज्ञपतिं) हम यजमान का हनन न करें। (अद्य) आज (नः) हमारे लिए (शिवो) कल्याण रूप (भवतम्) होवो ।।

अन्त में निम्नलिखित मन्त्र से तीन बार पूर्णाहुति करें ।

ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ।।

अर्थ—(ओम्) हे प्रभु आप की कृपा से (सर्वं) सब कर्म (वैं) निश्चय से (पूर्णं) पूर्ण हो गया है (स्वाहा) । यह कथन सत्य और शोभा युक्त है ।

।। इति ।।

[पूर्णमासी की आहुतियाँ]

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥२॥

ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

[अमावस्या की आहुतियाँ]

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥

ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥२॥

ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

(३) अथ पितृयज्ञः

अग्निहोत्र के पश्चात् पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता-पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत् सेवा करना पितृयज्ञ कहाता है।

॥ इति पितृयज्ञः ॥

(४) अथ भूतयज्ञः [बलिवैश्वदेव]

निम्न लिखित दश मन्त्रों से घृतमिश्रित क्षार और लवणान्न को छोड़कर पाकशाला में जो कुछ भोजन बना हो उसी की आहुति करें।

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥

ओं सोमाय स्वाहा ॥२॥

ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥

ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥

ओं कुह्वै स्वाहा ॥६॥

ओं अनुमत्ये स्वाहा ॥७॥

ओं प्रजापतयै स्वाहा ॥८॥

ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥९॥

ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

[इति भूतयज्ञः]

(५) अतिथियज्ञः

तद्यस्यैव विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

स्वयमेनमभ्युदेय ब्रूयाद् व्रात्यक्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथाते प्रियं तथास्तु। व्रात्य यथा ते वंशस्तथास्तुव्रात्य यथा ते निकामस्तथाऽस्त्विति ॥२॥

[अथर्व० का० १५।अ०२।व०११।मं० १, २॥]

जब पूर्ण विद्वान् परोपकारी सत्योपदेश, गृहस्थों के घर आवें, तब गृहस्थ लोग स्वयं समीप जाकर उक्त विद्वानों को प्रणाम आदि करके उत्तम आसन पर बैठा कर पूछें कि कल के दिन आप ने कहाँ निवास किया था? हे ब्रह्मन्! जलादि पदार्थ जो आप को अपेक्षित हों ग्रहण कीजिए, और हम लोगों को अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए॥

जो धार्मिक परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपात रहित, शान्त, सर्वंहितकारी विद्वानों की अन्नादि से सेवा करे उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना (अतिथियज्ञ) कहाता है, उसको नित्य प्रति किया करें।

इन पंच महायज्ञों को स्त्री और पुरुष दोनों प्रतिदिन किया करें।

(इति अतिथियज्ञ:)

।। यज्ञ-प्रार्थना ।। (१)

यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्जवल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिए ।।१।।
वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें।
हर्ष में हो मग्न सारे शोक सागर से तरें ।।२।।
अश्वमेधादिक रचाएं यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को ।।३।।
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के संताप सब हरते रहें ।।४।।
भावना मिट जाय मन से पाप अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर नार की ।।५।।
लाभकारी हों हवन हर प्राणधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हो शुभ गन्ध को धारण किए ।।६।।
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ।।७।।
प्रेमरस में तृप्त होकर वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणा रूप करुणा आप की सब पर रहे ।।८।।

(भजन २)

यही है आरजू भगवन् मेरा जीवन यह आला हो।
परोपकारी सचादारी व लम्बी उमर वाला हो ॥१॥

सरलता, शीलता, एकता हो भूषण मेरे जीवन के।
सचाई, सादगी श्रद्धा के मन साँचे में ढाला हो ॥२॥

तजूँ छल झूठ चालाकी बनूँ सत्संग अनुरागी।
गुनाहों और खताओं से मेरा जीवन निराला हो ॥३॥

तेरी भक्ति में ओ भगवन् लगादूँ अपना मैं तन मन।
दिखावे के लिए हाथों में थैली हो न माला हो ॥४॥

मेरा वेदोक्त हो जीवन कहाऊँ धर्म अनुरागी।
रहूँ आज्ञा में वेदों की न हुक्मे वेद टाला हो ॥५॥

तजूँ सब खोटे भावों को तजूँ दुर-वासनाओं को।
तेरे विज्ञान दीपक का मेरे मन में उजाला हो ॥६॥

सदाचारी रहूँ हरदम बुराई दूर हो मन से।
क्रोध और काम ने मुझ पर न जादू कोई डाला हो ॥७॥

मुसीबत हो कि राहत हो रहूँ हर हाल में साबिर।
न घबराऊँ न पछताऊँ न कुछ फरियादो वाला हो ॥८॥

पिलादो मोक्ष की घूँटी मरण जीवन से हो छुट्टी।
विनय अन्तिम यह अर्जुन की अगर मंजूरे वाला हो ॥९॥

(भजन-समर्पण ३)

जीवन का मैंने सौंप दिया,
सब भार तुम्हारे हाथों में।
उत्थान पतन अब मेरा है,
भगवान तुम्हारे हाथों में ॥१॥
हम तुम को कभी नहीं भजते,
तुम हम को कभी नहीं तजते।
अपकार हमारे हाथों में,
उपकार तुम्हारे हाथों में ॥२॥
हम में तुम में है भेद यही,
हम नर हैं तुम नारायण हो।
हम हैं संसार के हाथों,
संसार तुम्हारे हाथों में ॥३॥
दृग बिन्दु बनाया करते हैं,
इक सेतु विरह के सागर पर।
जिस पार पै हम विचरा करते,
वह पार तुम्हारे हाथों में ॥४॥

—:o:—

(भजन ४)

(प्रभु करुणा की याचना)

ईश्वर तुम्हीं दया करो,
तुम बिन हमारा कौन है ?
दुर्बलता, दीनता हरो,
तुम बिन हमारा कौन है ॥१॥
माता तूही, तूही पिता,
बन्धु तूही, तूही सखा।
तू ही हमारा आसरा,
तुम बिन हमारा कौन है ? ॥२॥
जग को रचाने वाला तू,
दुःखड़े मिटाने वाला तू,
बिगड़ी बनाने वाला तू
तुम बिन हमारा कौन है ? ॥३॥
तेरी दया के सामने,
कुछ भी नहीं हमें खबर।
जाएँ तो जाएँ हम किधर,
तुम बिन हमारा कौन है ? ॥४॥

—:०:—

(भजन ५)

(जीवन का कल्याण)

कल्याण मेरे इस जीवन का
भगवान् न जाने कब होगा ?
जिससे भय, भ्रान्ति मिटा करती,
वह ज्ञान न जाने कब होगा ?
जिस से निज दोष दिखा करते,
पापों अपराधों से डरते।
उस सद् विवेक का मानव में,
सन्मान न जाने कब होगा ?
अच्छे दिन बीते जाते हैं,
गुरुजन बहु विधि समझाते हैं।
भोगस्थल से योगस्थल में,
प्रस्थान न जाने कब होगा ?
शीतलता जिससे आती है,
सारी अशान्ति मिट जाती है।
वह नित्य प्राप्त है प्रेम सुधा,
पर पान न जाने कब होगा ?
वासना और चिन्ता मन में,
फिर कुछ भी नहीं सताती हैं।
जिससे प्रभु तेरे दर्शन हों,
वह ध्यान न जाने कब होगा ?

—:o:—

(भजन ६)

[कल्याण का साधन]

जब उत्कट इच्छा हो पैदा, कल्याण तुम्हारा तब होगा ।
मस्तक में आज्ञा चक्र खुले, भय-भ्रान्ति निवारण तब होगा ।।

अपने ही पैर-अंगूठे के, नाखून में अपना मुख देखें ।
जब आयें दोष नजर अपने, सब पाप पलायन तब होगा ।।

भय शंका लज्जा-धारण से, सन्मान विवेक का होता है ।
जब ऋतम्भरा प्रज्ञा जागे, उत्थान तुम्हारा तब होगा ।।

गुरुजन की शिक्षा धारण कर, जब प्रत्याहार सिद्ध कर लें ।
भोगस्थल तज योगस्थल में, प्रस्थान तुम्हारा तब होगा ।।

ऊपर नीचे के दाँतों में, यदि जीभ नोक रख ध्यान करें ।
रसना वाणी के दोष मिटें, प्रभु गान तुम्हारा तब होगा ।।

तालु में जीभ लगाने से, शीतलता शान्ति मिल जावे ।
मधु सोमग्रन्थि से टपकेगा, रस पान तुम्हारा तब होगा ।।

भ्रामरी नाद से ओं ध्वनि, आकाश में वृत्ति टिक जावे ।
विद्युत विशेष से हृदय में, प्रभु ध्यान तुम्हारा तब होगा ।।

हँसमुख आकृति में रहने से, चिन्ता कुवासना मिट जावें ।
जब तुर्यावस्था आजाए, कल्याण तुम्हारा तब होगा ।।

—:०:—

(भजन ७)

पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुमही इक नाथ हमारे हो।
जिन के कछु और आधार नहीं, तिनके तुमही रखवारे हो ॥१॥

सब भाँति सदा सुखदायक हो, दुःख दुर्गुण नाशन हारे हो।
प्रतिपाल करो सगरे जग को, अतिशय करुणा उर धारे हो ॥२॥

भुलि हैं हम ही तुमको तुम तो, हमारी सुधि नाहीं बिसारे हो।
उपकारन का कछु अन्त नहीं, छिन ही छिन जो बिस्तारे हो ॥३॥

महाराज महा महिमा तुम्हरी, समझे बिरले बुधवारे हो।
शुभ शान्ति निकेतन प्रेमनिधे, मन मन्दिर के उजियारे हो ॥४॥

इस जीवन के तुम जीवन हो, इन प्राणन के तुम प्यारे हो।
तुम सों प्रभु पाय प्रताप हरी, केहिके अब और सहारे हो ॥५॥

—:०:—

[आरती ८]

ओं जय जगदीश हरे, पिता जय जगदीश हरे।
भक्त जनों के संकट, क्षण में दूर करे ॥१॥

जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनसे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥२॥

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किस की।
तुम बिन और न दूजा, आश करूँ जिस की ॥३॥

तुम पूरण परमात्मा, तुम अन्तरयामी।
पार ब्रह्म परमेश्वर, तुम सब के स्वामी ॥४॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता ।
दीन दयालु कृपालु, कृपा करो भर्त्ता ॥५॥

तुम हो एक अगोचर, सब के प्राणपति ।
किस विध मिलूँ दयामय, तुमको मैं कुमति ॥६॥

दीन बन्धु दुःख हर्त्ता, तुम रक्षक मेरे ।
करुणा हस्त बढ़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥७॥

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा ।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥८॥

—:०:—

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगंपूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोमभुत रुद्रं हुवेम ।

हे सत्त् चित् आनन्द, अग्नि से भी अधिक प्रकाश के पुञ्ज, ज्ञान के भण्डार, मन बुद्धि और आत्मा को पवित्र प्रेरणा देने वाले, समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, हम आप को ही आज प्रातः काल के शुभ अवसर में, सन्मार्ग का प्रदर्शक, सच्चा सखा, आदर्श माता व पिता तथा आदर्श गुरु और संरक्षक मानकर जीवन की उत्तम रूप से दिनचर्या बिताने के लिए आपके आशीर्वाद से ही तत्पर हो रहे हैं । परम पूज्य पिता हम सच्चे आस्तिक बन कर और आपके प्रकाश को सर्वव्यापक मान कर आप से कोई कर्म छिपाने का प्रयत्न न करें । अपितु आप की प्रेरणा से ही इस कर्मभूमि में आदर्श कर्मयोगी बनकर जीवन का खेल पवित्रता से खेलते रहें और अपने कर्त्तव्यों का निष्काम भाव से पालन करते रहें ।

हे परम हितकारी सखा आप दीनबन्धु और न्यायकारी हैं। आप ही सब से अधिक वरने योग्य उपास्य देव हैं। इसलिए हम सांसारिक पदार्थों में सुख और शान्ति की आशा न करते हुए आप की उपासना व आराधना श्रद्धा पूर्वक करते रहें।

हे सम्पूर्ण शुभ गुणों व शक्तियों के प्रदान करने वाले आपको ही समस्त संसार के धनों का स्वामी व बलदाता मान कर आपकी अनन्य भक्ति में तल्लीन रहें।

हे वेद ज्ञान, पौरुष शक्ति व अनन्त पराक्रम के असीम सागर, बड़े २ आततायियों को भी जिस आप के पराक्रम व न्याय व्यवस्था के अधीन दण्ड भुगतना पड़ता है। ऐसे आपको रूद्ररूप तथा महाशक्तिशाली मान कर पापों से हम बचते रहें और दुरात्माओं से निर्भीक हो कर जीवन के क्षेत्र में श्रेय मार्ग पर बढ़ते चले जायें। यही हमारी आप से हृदयंगम प्रार्थना है। प्यारे पिता! आप इसे स्वीकार करो। और हमें ऐसी शक्ति प्रदान करो कि जिससे हम इस लक्ष्य को कभी भी हिय की आँखों से ओझल न होने दें।

ओ३म् शम्।

—:o:—

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि परेहि न त्वा कामये, वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः।

[अथर्व का ६ सू. ४५ म. १]

हे सम्पूर्ण व्रतों के पालन में सहायक व्रतपते परमात्मन्! आप घोर से घोर दुःख में आशाओं के आधार बन कर परम सुख और शान्ति की ओर चलने को प्रेरणा देते रहते हैं। सुख समृद्धि धन जन यौवन की अवस्था में आस्तिकता कृतज्ञता संयम त्याग व परोपकार की प्रेरणा के स्रोत भी आप ही हैं। हे सन्तों की सम्पत्ति! भक्तों की विभूति, निराश्रयों के आश्रय, दीनों के नाथ जब हम आपकी आज्ञाओं को भङ्ग करके आपकी आशीर्वाद के पात्र नहीं रहते। तो सत्कर्मों से विमुख हो कर विषय वासनाओं के निकृष्ट विचारों के क्रीत दास बन कर पाप के महा अन्धकूप में गिर जाते हैं। आधिव्याधियों से पीड़ित होते हुए ठोकरें खाते हुए भी यह पाप वृत्तियों वाला मन हमें पुनः २ भौतिक स्वादों का प्रलोभन दे कर पतन की ओर ले जाता है। हे करुणा निधान पिता, रसों के परम रस, सुखों के सागर, सन्तोष के सरोवर! आपकी दी हुई दृढ़ धारण भक्ति सङ्कल्पों से इस मन को वश में रख सकें। हे जीवन नय्या के खेवट पिता! आपके प्रदान किये हुए आत्मबल से इस पापी मन का इन शब्दों में प्रताड़न कर सकें नीच वृत्तियों वाले, हम से दूर भाग जाना मुँह छिपा, अपनी पीठ दिखा परिणाम क्लेश असन्तोष व ग्लानि देने वाले प्रलोभनों को मेरे सामने बार २ मत ला। हे महावेगवान! तू गृहस्थ के सुधार व गो आदि प्रिय पशुओं की सेवा में तत्पर रहकर अपने को इतना थका दे कि मुझे विषय चिन्तन की होश ही न रहे या सघन वनों के सुहावने वृक्षों पुष्पित लताओ व हरी भरी वनस्पत्तियों में भगवान् को दिव्य महिमा का दर्शन कर इसकी आराधना में तल्लीन होना यही तेरे कल्याण का एक मात्र उपाय हो।

—:०:—

॥ प्रार्थना ॥

ओ३म् यन्मे चक्षु, छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं वृहस्पतिर्मेतद्दधातु शंनो भवतु भुवनस्य यस्पतिः।

[यजुर्वेद अ. ३६ म. २]

हे परम कल्याणकारी ओम्! आज मैं अपने हृदय की गुह्य परिस्थिति को आपके सामने रख रहा हूँ। प्यारे पिता यद्यपि मुझे सत्संग में रहते हुए वर्षों बीत चुके हैं। और सत्य शास्त्रों तथा महपुरुषों के प्रवचन सुनते हुए जीवन का चिरकाल बीत गया है। यथाशक्ति आपकी उपासना और प्रार्थना में वर्षों से तल्लीनता रही परन्तु मेरे सच्चे प्रभु, मुझे यह कहते हुए बड़ा शोक होता है कि मेरे मन के अन्दर अभी तक पूर्णतया संसार की वासनाओं से निवृत्ति को अवस्था नहीं आई। सत्संग का गाढ़ा रंग मेरे मन पर प्रगाढ़ रूप में नहीं चढ़ा है। मेरा वैराग्य अभी तक अस्थायी वैराग्य ही रहा है। विषयों की वासनाओं के बीज मेर मानसिक क्षेत्र में सूक्ष्म रूप से सर्वथा विद्यमान रहते हैं। और वे कुसंग व दुश्चिन्तन की अनुकूल अवस्था की प्राप्त करके पुनः अंकुरित हो विनाशकारी रूप धारण कर लेते हैं। प्यारे पिता मेरी आयु ऐसे ही निष्फल जाती हुई प्रतीत होती है। मेरे जीवन के प्रयासों का विशेष अलौकिक फल नहीं निकलता। जीवन की लीला न जाने कब समाप्त हो जाय। ऐसा न हो कि सच्ची साधना के अभाव में मैं सर्वथा असफल रूप इस संसार से प्रस्थान कर दूँ। अतः हे नाथ! आज अपने अतीत अधूरे प्रयत्नों पर पश्चाताप करते हुए आपसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि हे दयानिधे! मुझे सच्चा वैराग्य प्रदान करो। जिसे प्राप्त कर पुनः कभी संसार के पदार्थों में राग न होने पावे। उसके लिए मेरो

साधना मन, वचन और कर्म से परम पवित्र तथा तीव्र रूप में हो जो कि नश्वर रूप संसार के विषयों के बन्धनों व आकर्षणों को छिन्न-भिन्न व नष्ट कर देवे। वास्तविक निवृत्ति के उच्च शिखर पर पहुँचा दे। इन सुखद तथा प्रिय लगने वाले विषयों का दुष्परिणाम जरा दुर्बलता, पश्चाताप, निराशा, मानसिक दुर्बलता, तथा अपयश व कान्ति हीनता के रूप में मेरे सामने सदैव विद्यमान रहे। हे प्यारी माता इसी दुष्परिणाम के दृश्य का ज्ञान मेरे अन्दर इतनी घृणा इन विषयों के प्रति उत्पन्न कर दे कि उनमें पुनः कभी भी प्रवृत्ति न होने पावे। उनके प्रति वास्तविक घृणा मुझे पाप के अन्धकूप से बचाती रहे। प्यारे गुरुदेव मैं इसी जन्म में अपना कल्याण चाहता हूँ।

॥ ओ३म् शम् ॥

वैदिक राष्ट्र गान ।

ओ३म् आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथी जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशु सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः । सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न औषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।

[यजु० अ० २२।२]

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेज धारी ।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल विनाशकारी ॥
होवें दुधारु गौएं पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार बर्सें परजन्य ताप धोवें ॥
फल फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी ।
हों योग क्षेमकारी स्वाधीनता हमारी ॥